अप्रैल-जून, अंक 2, वर्ष 2024

A Peer reviewed Journal

वितस्ता विमर्श

हिंदी भाषा,साहित्य, संस्कृति व समीक्षा को समर्पित

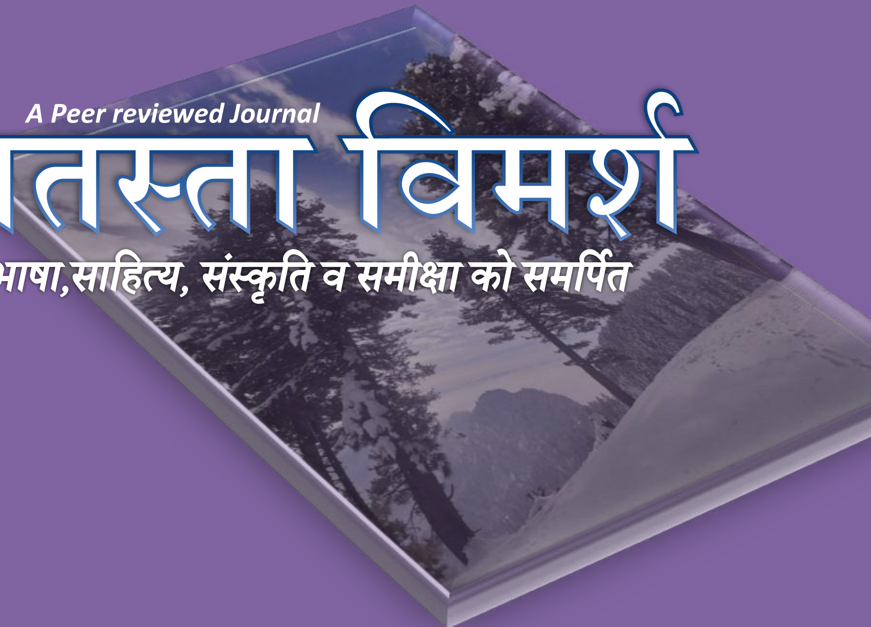

सम्पादक

डॉ. मुदस्सिर अहमद भट्ट

वितस्ता विमर्श

हिंदी भाषा, साहित्य, संस्कृति व समीक्षा को समर्पित

सम्पादक
डॉ. मुदस्सिर अहमद भट्ट
श्रीनगर, जम्मू व कश्मीर
ईमेल- mudasirhindi@gmail.com
मो. 9682593408

वितस्ता विमर्श एक अव्यवसायिक त्रैमासिक ई-पत्रिका है।
वर्ष में ४ अंक प्रकाशित होंगे
१-१५ अप्रैल तक जनवरी-मार्च अंक
१-१५ जुलाई तक अप्रैल-जून अंक
१-१५ अक्टूबर तक जुलाई-सितम्बर अंक
१-१५ जनवरी तक अक्टूबर-दिसम्बर अंक
प्रत्येक अंक के लिए रचनाएँ भेजने, दिशा-निर्देश तथा अन्य जानकारी www.vitastavimarsh.com पर

© *सर्वाधिकार सुरक्षित*

वितस्ता विमर्श अहिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र श्रीनगर, जम्मू व कश्मीर से प्रकाशित होने वाली प्रथम त्रैमासिक ई-पत्रिका है। अतः इस पत्रिका के साथ जुड़ें और हमें सहयोग दें। vitastavimarsh1@gmail.com पर अपनी रचनाएँ प्रेषित करें और अपने सुझावों से पत्रिका को समृद्ध करें।

वितस्ता विमर्श पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं व आलेखों की मौलिकता का दायित्व स्वयं रचनाकारों, लेखकों का है। रचनाओं व आलेखों में व्यक्त विचारों से संपादक व संपादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। किसी भी प्रकार के विवाद में न्यायक्षेत्र केवल श्रीनगर, जम्मू व कश्मीर होगा।

सम्पादक

डॉ. मुदस्सिर अहमद भट्ट

श्रीनगर, कश्मीर

email: mudasirhindi@gmail.com

Cell: 9682593408

सह सम्पादक

डॉ. अमृता सिंह

श्रीनगर, कश्मीर

email: amrita.ku26@gmail.com

Cell: 9622911777

परामर्श मंडल

प्रो. ज़ोहरा अफ़ज़ल

प्रो. ज़ाहिदा जबीन

प्रो. कहकशां एहसान साद

अनिल शर्मा जोशी

प्रो. संजय एल. मादार

प्रो. मुहम्मद मेराज अहमद

डॉ. सतीश विमल

प्रो. विनोद कुमार तनेजा

प्रो. रुबी ज़ुत्शी

प्रो. मुहम्मद आशिक अलीश्री

प्रो. जय कौशल

प्रो. करण सिंह ऊटवाल

प्रो. महबूब सुबानी

सम्पादक मण्डल

डॉ. शगुफ्ता नियाज़

डॉ. नाइरा कुरैशी

डॉ. बिलाल अहमद कुठू

डॉ. नरेश कुमार सिहाग

श्री आसिफ अली भट्ट

डॉ. सुशीला आर्या

डॉ. सब्ज़ार अहमद भट्टू

डॉ. भारतेंदु कुमार पाठक

डॉ. रेखा सोनी

श्री विशाल कुमार

Bilal Ahmad Bhat
M.D.

DIAL KASHMIR
TOUR AND TRAVELS

A dial to paradise.....

9906774568, 7006444503
info@dialkashmir.in
www.dialkashmir.in
Pahloo Brein Nishat, Near Abu Bakar Jamia Masjid Sharief, Srinagar-191121 J&K (UT)

Hotel Bookings | Houseboat Bookings | Car Rentals
Air Ticketing | Honeymoon Packages | Holiday Packages
Vaishno Devi Darshan | Amarnath Yatra

Kashmir Trekking Packages Also Available

info@dialkashmir.in www.dialkashmir.in

इस अंक में

सम्पादकीय- भाषाएँ सिखा देती हैं जीने का हुनर

वैचारिक खंड **11-19**

समाज चेता भीमराव आम्बेडकर- ऋषिकेश श्रीवास्तव

इतिहास/विरासत खंड **20-55**

कश्मीर-ए-दास्तान- डॉ. सचिन कुमार

कश्मीरी लोक संस्कृति चंद्रकांता के उपन्यासों के विशेष सन्दर्भ में- डॉ. नसरीन जान

पुष्टि मार्ग और कश्मीर के नवधा साधक- नसरीन अली 'निधि'

लोंग्चांग आदिवासी उप-समुदाय के इतिहास और लोक-संस्कृति- रेमोन लोंग्कु

बदलता कश्मीर **56-58**

त्रिलोकी बाबू का कोट- डॉ. शिबन कृष्ण रैणा

साक्षात्कार खंड **59-73**

मुलाकात डॉ. उपेन्द्रनाथ रैना के साथ- डॉ. किशोर सिन्हा

विमर्श खंड **74-87**

बड़ा हुआ तो क्या हुआ- डॉ. अंगदकुमार सिंह

वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भाषाओं का योगदान...- सबीना अख्तर

कथा खंड **88-93**

जीतू- डॉ. रंजीता कटकवार

हाई-वे का दर्द यानी ट्रकों की धड़कन- घनश्याम अग्रवाल

काव्य खंड **94-98**

यह कश्मीर की धरती- चंचल

ठंडी वादियों में- रेणु

कश्मीर- उमा

वितस्ता खंड **99-100**

कश्मीर विश्वविद्यालय का तराना (लिप्यन्तरण)-डॉ. मुदस्सिर अहमद भट्ट

भाषाएँ सिखा देती हैं जीने का हुनर

समस्त भारतीय भाषाओं में व्याप्त साम्य एवं वैषम्य के प्रश्न निश्चित रूप से अपने गर्भ के भीतर व्यापकता का न केवल बोध कराते हैं अपितु एक परिश्रम साध्य अनुसंधान की भी मांग करते है, जहाँ सर्वेक्षण, अन्वेषण तथा विश्लेषण की अनिवार्यता अपेक्षित है। इन भाषाओं की शब्दावली तथा अभिव्यंजना के स्तर जहाँ तक समान है, इस विषय पर कई आलेखों में चर्चा की गई है। वास्तव में समान शब्दावली तथा अभिव्यक्ति के स्तर समान होते हुए भी भिन्नार्थ शब्दावली की चर्चा भी महत्वपूर्ण हो जाती है। इस दिशा में हिंदी तथा भारतीय भाषाओं के सन्दर्भ में केन्द्रीय हिंदी संस्थान, आगरा तथा भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर से शब्द सूचियाँ भी प्रकाशित हुई हैं। केन्द्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली का योगदान इस क्षेत्र में भी बहुत महत्वपूर्ण है।

वस्तुतः प्रत्येक भाषा की अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक पीठिका होती है। भौगोलिक वातावरण, रहन-सहन, रीती-रिवाज, परम्पराएँ, वेशभूषा आदि प्रत्येक भाषा के अभिन्न अंग होते हैं। यदि कश्मीरी भाषा और हिंदी भाषा के सन्दर्भ में देखा जाए तो कश्मीरी भाषा की भी कई विशेष सांस्कृतिक पीठिकाएँ हैं जो इसे अन्य भारतीय भाषाओं से कुछ आयामों व सन्दर्भों में भिन्न करती है। उदाहरणार्थ कश्मीरी के कई भौगोलिक पारिभाषिक शब्द ऐसे हैं जिनके पर्यायवाची शब्द अन्य भारतीय भाषाओं में उपलब्ध नहीं हैं। कश्मीर के विशेष भौगोलिक वातावरण से सम्बंधित कुछ शब्द जैसे 'यख', 'शीन', 'शीशरगाँठ', 'तुलकअतुर', 'शिशम' आदि अलग-अलग वस्तुओं को परिलक्षित करते हैं परन्तु हिंदी-उर्दू जैसी भाषाओं में इन सबके लिए 'बर्फ' शब्द ही उपलब्ध है। इसी प्रकार वेशभूषा से सम्बंधित 'फेरन', 'पोच्चछ', 'कसाब' आदि शब्दों के लिए भी अन्य भारतीय भाषाओं में पर्यायवाची शब्द मिलना कठिन है। इस प्रकार प्रत्येक भाषा अपनी विशिष्टता लिए हुए अपनी व्यापकता एवं अन्य भारतीय भाषाओं से समीपता व समानता को परिलक्षित करते हुए प्रगितिशीलता की ओर अग्रसर रहती है। यह भाषिक विशिष्टता रूप-

रचना, रचना प्रक्रिया, ध्वनि-व्यवस्था, अर्थ-विस्तार तथा भौगोलिक व सांस्कृतिक प्रवृत्तियों पर आधारित होती है।

भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोण व भाषा वैज्ञानिक नियमानुसार संसार की प्रत्येक भाषा अपनी निकटवर्ती परिवेश तथा सीमाओं में प्रचलित भाषाओं से प्रभावित रहती है। यहाँ शब्दों का आदान-प्रदान होता है, ये भाषाएँ परस्पर शब्द ग्रहण करते है। ध्वनि-व्यवस्था, रूप-व्यवस्था, वाक्य-विन्यास, अर्थ विस्तार, आदि में भी यह प्रभाव दृष्टिगत होता है। इस बात में भी कोई दो राय नहीं है कि भाषाएँ जीवन यापन का अभिन्न अंग है, दोनों का अन्योनाश्रित सम्बन्ध, दोनों एक दूसरे के पूरक भी है। सामाजिक व्यवस्था व सामाजिक क्रिया-व्यापार भाषिक संरचना की धुरी को प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से प्रभावित करती रहती है। मनुष्य अपने कांफोर्टज़ोन के भीतर ही रहना चाहता है और तदनुसार भाषा का व्यवहार करता है। वास्तव में भाषाएँ जीवन को संचालित-परिचालित करती हैं और जीवन का मर्म समझाती हैं। जीवन मनुष्य के मर्म, कर्म और धर्म का नाम है।

सम्पादक
डॉ. मुदस्सिर अहमद भट्ट
श्रीनगर, जम्मू व कश्मीर

समाज चेता भीमराव आम्बेडकर

ऋषिकेश श्रीवास्तव

महापुरुषों की जब भी चर्चा होती है, तो उसमें बाबा साहब भीमराव आम्बेडकर का नाम ज़रूर लिया जाता है। ऐसा होने के पीछे पर्याप्त कारण है। कोई व्यक्ति ऐसे ही महान नहीं बन जाता है। डॉ. आम्बेडकर के विषय में अभी तक जो भी शोध हुए हैं उससे यह प्रमाणित होता है कि आपके कार्य निश्चित रूप से महान थे। डॉ. भीमराव के विचार उनके द्वारा लिखित साहित्य से ज्ञात होता है, जो मूलतः अंग्रेज़ी भाषा में गहन अध्ययन एवं चिंतन के बाद लिखा गया है। आपके द्वारा व्यक्त विचारों की प्रासंगिकता आज भी कम नहीं हुई है; वे आज भी प्रासंगिक हैं। कदाचित यही कारण है कि आज आपका साहित्य एवं चिंतन भारत ही नहीं बल्कि पूरी दुनिया में शोध का विषय बना हुआ है। आपके बारे में नित नई जानकारियाँ प्राप्त हो रही हैं। आपका विधिवेत्ता, अर्थशास्त्री, राजनीतिज्ञ और समाजसुधारक होना, आपके लेखन से प्रमाणित हो जाता है। डॉ. आम्बेडकर द्वारा रचित ग्रंथ कुछ तो उनके जीवनकाल में ही प्रकाशित हो गये थे तथा कुछ उनके परिनिर्वाण के बाद प्रकाशित किये गये; जिनका तिथिवार विवरण निम्नवत् है-

1. एडमिनिस्ट्रेशन एंड फिनांसेज़ ऑफ़ द ईस्ट इंडिया कंपनी (एम०ए० की थीसिस)
2. द इवोल्यूशन ऑफ़ प्रोविंशियल फिनांसेज़ इन ब्रिटिश इंडिया (पीएच०डी० की थीसिस, 1917)
3. स्मॉल होल्डिंग्स इन इण्डिया एण्ड देयर रेमेडीज (1918)
4. दी प्राब्लम आफ दि रुपी : इट्स ओरिजिन एंड इट्स सॉल्यूशन (डीएस०सी० की थीसिस, 1923)
5. कास्ट्स इन इंडिया (मई 1926)
6. वेटिंग फ़ॉर अ वीज़ा (आत्मकथा) (1935-1936)

7. अनाहिलेशन ऑफ कास्ट्स (जाति प्रथा का विनाश) (मई 1936)
8. विच वे टू इमैन्सिपेशन (मई 1936)
9. फेडरेशन वर्सेज़ फ्रीडम (1936)
10. पाकिस्तान और द पर्टिशन ऑफ़ इण्डिया/थॉट्स ऑन पाकिस्तान (1940)
11. रानडे, गाँधी एंड जिन्नाह (1943)
12. मिस्टर गाँधी एण्ड दी इमैन्सिपेशन ऑफ़ दी अनटचेबल्स (सितम्बर 1945)
13. वॉट कांग्रेस एंड गाँधी हैव डन टू द अनटचेबल्स ? (जून 1945)
14. कम्यूनल डेडलाक एण्ड अ वे टू साल्व इट (मई 1946)
15. हू वर दी शूद्राज़ ? (अक्टूबर 1946)
16. द कैबिनेट मिशन एंड द अंटचेबल्स (1946)
17. स्टेट्स एण्ड माइनोरीटीज (1947)
18. महाराष्ट्र एज अ लिंग्विस्टिक प्रोविन्स स्टेट (1948)
19. द अनटचेबल्स: हू वर दे आर व्हाय दे बिकम अनटचेबल्स (अक्टूबर 1948)
20. थॉट्स ऑन लिंग्विस्टिक स्टेट्स: राज्य पुनर्गठन आयोग के प्रस्तावों की समालोचना (प्रकाशित 1955)
21. द बुद्धा एंड हिज धम्मा (भगवान बुद्ध और उनका धम्म) (1957)
22. रिडल्स इन हिन्दुइज्म
23. व्हॉट द ब्राह्मिण्स हैव डन टू द हिन्दुज
24. इसेज ऑफ भगवत गीता
25. इण्डिया एण्ड कम्यूनिज्म
26. रेवोलोटिओं एंड काउंटर-रेवोलुशन इन एनशियंट इंडिया
27. द बुद्धा एंड कार्ल मार्क्स (बुद्ध और कार्ल मार्क्स)
28. कॉन्स्टिट्यूशन एंड कॉस्टीट्यूशनलीज़म

डॉ. आम्बेडकर द्वारा उपर्युक्त लिखित ग्रंथों में विवेचित विषय व्यापक हैं जिसमें समस्या का विश्लेषण विस्तार से किया गया है। डॉ. आम्बेडकर ने अपनी

कृतियों में समस्या का विश्लेषण बहुत ही सूक्ष्म एवं सटीक किया है। अपने लेखन द्वारा उन्होंने दलितों व देश की समस्याओं पर प्रकाश डाला। उनकी रचनाओं को उनके विशिष्ट सामाजिक दृष्टिकोण और विद्वता के लिए जाना जाता है, जिनमें उनकी दूरदृष्टि और अपने समय के आगे की सोच की झलक मिलती है। डॉ. आम्बेडकर के ग्रंथ भारत सहित पूरे विश्व में पढ़े जाते हैं। यहाँ पर हम उनके कुछ प्रमुख ग्रंथों में दिये गये उनके विचार को जान पाएंगे।

'द इवोल्यूशन ऑफ़ प्रोविंशियल फिनांसेज़ इन ब्रिटिश इंडिया', महाराजा बड़ौदा नरेश श्रीमंत सयाजी राव गायकवाड को समर्पित की गयी है। उल्लेखनीय है कि महाराजा ने ही उन्हें अमेरिका में शिक्षा ग्रहण करने हेतु भेजा था। पुस्तक वित्त से संबंधित है, जिसमें ब्रिटीश नौकरशाही का बुरी तरह से भण्डाफोड़ किया गया है।

'स्मॉल होल्डिंग्स इन इण्डिया एण्ड देयर रेमेडीज' में डॉ. आआम्बेडकर ने छोटी और बिखरी हुई जोतने योग्य भूमि के विस्तार एवं उसके चकबन्दी से संबंधित अपने विचार दिये हैं। उनका मानना था कि जब तक छोटी एवं बिखरी हुई जोतने योग्य भूमि का विस्तार एवं चकबन्दी नहीं होगी तब तक भारत के कृषि सुधार में प्रगति नहीं होगी।

'दी प्राब्लम ऑफ़ द रूपी', शोध-प्रबंध में डॉ. आंबेडकर ने स्पष्ट रूप से विश्लेषित किया है कि मुद्रा समस्या के अन्तिम निर्णय में, किस प्रकार ब्रिटिश शासकों ने भारतीय रुपये की कीमत को पाउण्ड के साथ जोड़कर अपने अधिकतम लाभ का मार्ग चुना। इस हेरा फेरी ने ही भारतीयों को गंभीर आर्थिक कठिनाइयों में ढकेल दिया, क्योंकि भारतीय धन, ब्रिटीश खजाने में निरन्तर जमा होने लगा। कई ढंग से यहां का धन ब्रिटिश सरकार तथा जनता के लाभ में जाने लगा।

'कास्ट्स इन इंडिया' के अन्तर्गत भारत में जातियों की उत्पत्ति, गठन एवं विकास पर प्रकाश डाला गया है। डॉ. आम्बेडकर की दृष्टि में, जाति एक ऐसा बंधनयुक्त वर्ग है, जो अपने तक सीमित रहता है। उनके अनुसार भारत में जाति समस्या के चार पक्ष हैं- (क) हिन्दू जनंसख्या में विविध तत्वों के सम्मिश्रण के

बावजूद इसमें दृढ़ सांस्कृतिक एकता है। (ख) जातियां इस विराट सांस्कृतिक इकाई का अंग हैं। (ग) शुरू में केवल एक ही जाति थी। (घ) देखा-देखी या बहिष्कार से विभिन्न जातियां बन गयी।[1]

'अनाहिलेशन ऑफ कास्ट्स' का संबंध जाति-प्रथा के उन्मूलन से है। जात-पात तोड़क मण्डल द्वारा आयोजित वार्षिक अधिवेशन में लाहौर में मार्च 1936 में डॉ. आम्बेडकर को अध्यक्षीय भाषण देने के लिये आमंत्रित किया गया था, लेकिन मण्डल के सदस्यों ने जब कार्यक्रम से पूर्व डॉ. आम्बेडकर के भाषण को देखा तो उन्हें यह आपत्तिजनक लगा। मण्डल के सदस्यों ने इस भाषण में परिवर्तन के लिए डॉ. आम्बेडकर से अनुरोध किया, लेकिन डॉ. बाबासाहेब भाषण में कोई भी परिवर्तन करने से स्पष्ट मना कर दिया। इस कारण से मण्डल के इस वार्षिक अधिवेशन के कार्यक्रम को रद्द कर दिया गया। पुस्तक में डॉ. आम्बेडकर ने जाति व्यवस्था के आधार पर उसके उन्मूलन के संबंध में गंभीर चर्चा की है। जाति व्यवस्था के उन्मूलन के संबंध में उन्होंने लिखा है, ''यदि आप जाति प्रथा में दरार डालना चाहते हैं तो इसके लिए आपको हर हालत में वेदों और शास्त्रों में डाइनामाइट लगाना होगा, क्योंकि वेद और शास्त्र तर्क से अलग हटाते हैं और वेद तथा शास्त्र नैतिकता से वंचित करते हैं। आपको 'श्रुति' और 'स्मृति' के धर्म को नष्ट करना ही चाहिए। इसके अलावा और कोई चारा नहीं है।''[2]

'थाट्स ऑन पाकिस्तान' पुस्तक ने भारत विभाजन की समस्या का उचित समाधान प्रस्तुत करने की दिशा में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। इस पुस्तक के संबंध में डॉ. अम्बेडकर लिखते हैं कि ''पुस्तक के नाम से ऐसा लगता है जैसे पाकिस्तान के बारे में एक सामान्य सा खाका खींचा गया है, जबकि इसमें उसके अलावा और भी बहुत कुछ है। यह पुस्तक भारतीय इतिहास और भारतीय राजनीति के साम्प्रदायिक पहलुओं की एक विश्लेषणात्मक प्रस्तुति है। पुस्तक को भारतीय इतिहास और भारतीय राजनीति की एक झांकी कहा जा सकता है।''[3]

'वॉट कांग्रेस एंड गाँधी हैव डन टू द अनटचेबल्स?' पुस्तक में कांग्रेस और गांधी द्वारा अछूतों के लिए किये गये कार्यों का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया है तथा सही कार्य न करने के लिए उनकी अच्छे से खबर ली गयी है। पुस्तक में यह बताया गया है कि कांग्रेस पार्टी ने अछूतोद्धार की समस्या को अपने राजनीतिक लक्ष्यों की प्राप्ति का साधन मात्र बनाया है। कांग्रेस ने अपने अछूतोद्धार कार्यक्रम का जितना प्रचार किया, वास्तव में उतना काम नहीं किया। इसीलिए पुस्तक में दलित वर्गों से गांधी एवं गांधीवाद से सावधान रहने के लिए निवेदन किया गया है। डॉ. आम्बेडकर के अनुसार गांधीवाद अछूतों के साथ छल है।

'हू वर दी शूद्राज' एक खोजपरक पुस्तक है, जिसमें शूद्रों की उत्पत्ति के इतिहास का विश्लेषण किया गया है। इसमें बताया गया है कि 'शूद्र' शब्द की उत्पत्ति मात्र शाब्दिक नहीं है। उसका ऐतिहासिक सम्बन्ध है। आज जिन्हें शूद्र कहा जाता है वे सूर्यवंशी आर्य क्षत्रिय लोग थे।

'स्टेट्स एण्ड माइनोरीटीज' नामक पुस्तक में डॉ. आम्बेडकर ने समाज की समाजवादी रूपरेखा प्रस्तुत करने का प्रयास किया है साथ ही उन्होंने यह भी आग्रह किया है कि समाजवाद को संविधान की धाराओं द्वारा स्थापित किया जाए ताकि विधायिका तथा कार्यपालिका के सामान्य कार्य, उन्हें परिवर्तित न कर सके। राज्य समाजवाद का व्यावहारिक रूप संसदीय जनतंत्र द्वारा लाया जाना चाहिए, क्योंकि संसदीय जनतंत्र समाज के लिए सरकार की न्यायोचित व्यवस्था है।

'दी अनटचेबल्स' में छुआछूत के उत्पत्ति के सिद्धान्तों के बारे में विस्तार से बताया गया है। डॉ. आम्बेडकर ने इस पुस्तक में प्रमाणों के साथ यह सिद्ध किया है कि ''अस्पृश्य पहले पराजित लोग थे और बौद्ध धर्म तथा गोमांस खाना न छोड़ने से उन्हें अस्पृश्य माना गया। उनके मतानुसार अस्पृश्यता का उद्गम ईस्वी सन् 400 के आस-पास हुआ था। उन्होंने यह साबित किया कि बौद्ध धर्म और ब्राह्मण धर्म में श्रेष्ठता के लिए जो संघर्ष हुआ उससे अस्पृश्यता पैदा हुई।[4]

'थाट्स ऑन लिंग्विस्टिक स्टेट्स' डॉ. आम्बेडकर का महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इसमें उन्होंने राज्यों के भाषाई गठन का चित्रण किया है तथा एक राज्य एक भाषा के सार्वभौमिक सिद्धान्त को स्वीकार किया है। हिन्दी भाषा को सम्पूर्ण राष्ट्र की राजकीय भाषा बनाये जाने पर बल दिया है। उनके अनुसार एक भाषा राष्ट्र को संगठित रख सकती है और सम्पूर्ण राष्ट्र में शान्ति तथा विचार संचार को आसान बना सकती है।

डॉ. आम्बेडकर द्वारा लिखित सभी पुस्तकें अपना विशिष्ट महत्व रखती हैं लेकिन उनमें से सबसे महत्वपूर्ण स्थान 'द बुद्धा एण्ड हिज धम्म' का है। अगर इस ग्रंथ को बौद्ध धर्म का धर्मशास्त्र कहा जाय तो अतिश्योक्ति न होगी। यह एक विशाल ग्रंथ है, जिसमें बौद्ध धर्म की विशद विवेचना की गयी है। आम्बेडकर साहित्य के विद्वान डॉ. डी. आर. जाटव के अनुसार 'यह ग्रंथ कई मौलिक प्रश्नों को प्रस्तुत करता है जिसका डॉ. आम्बेडकर ने बड़ी बुद्धिमत्ता के साथ उत्तर दिया है। सर्वप्रथम उन्होंने हीनयान तथा महायान में विभाजित बौद्धधर्म को कोई महत्व नहीं दिया। बौद्ध धर्म की दार्शनिक व्याख्याएँ भिन्न हो सकती हैं, लेकिन धर्म के रूप में बौद्ध धर्म एक ही है।[5]

इन पुस्तकों के अतिरिक्त डॉ. आम्बेडकर ने अंग्रेज़ी तथा मराठी भाषाओं में अनेक लेख लिखे, जो विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए थे। इन लेखों का सामाजिक तथा साहित्यिक दृष्टिकोण से विशेष महत्व है। जैसे- लेबर एण्ड पार्लियामेन्ट्री डेमोक्रेसी, नीड फॉर चेक्स एण्ड वैलेन्सेज, माई पर्सनल फिलॉसफी, बुद्धिज्म एण्ड कम्यूनिज्म आदि। बाबा साहेब डॉ. भीमराव आम्बेडकर ने दलित समाज में जागृति लाने के लिए कई पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन एवं सम्पादन किया था। पत्र-पत्रिकाओं ने उनके दलित आंदोलन को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। कहना अनुचित न होगा कि डॉ. आम्बेडकर ही दलित पत्रकारिता के आधार स्तम्भ हैं। वे दलित पत्रिकारिता के प्रथम संपादक, संस्थापक एवं प्रकाशक हैं। उनके द्वारा संपादित पत्र आज की पत्रकारिता के लिए एक मानदण्ड है। डॉ.

आम्बेडकर द्वारा निकाले गये पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से हम उनके विचार तथा उनके उद्देश्य को समझ सकते हैं।

मूक नायक मराठी भाषा की एक पाक्षिक पत्र था जिसका प्रकाशन 31 जनवरी, 1920 से शुरू हुआ था। आम्बेडकर इस पत्र के अधिकृत संपादक नहीं थे, लेकिन वे ही इस पत्र की जान थे। एक प्रकार से यह पत्र उन्हीं की आवाज़ का दूसरा लिखित रूप था। 'मूक नायक' सभी प्रकार से मूक-दलितों की ही आवाज़ थी, जिसमें उनकी पीड़ा बोलती थी। पत्र ने दलितों में एक नई चेतना का संचार किया तथा उन्हें अपने अधिकारों के लिए आंदोलित होने के प्रति उत्सुक किया। यह पत्र आर्थिक अभावों के चलते बहुत दिन तक तो नहीं चल सका लेकिन एक चेतना की लहर दौड़ाने के अपने उद्देश्य में कामयाब रहा।

'मूक-नायक' के बन्द हो जाने के बाद डॉ. आम्बेडकर ने 3 अप्रैल, 1927 को अपना दूसरा मराठी पाक्षिक 'बहिष्कृत भारत' निकाला। यह पत्र बॉम्बे से प्रकाशित होता था। इसका संपादन डॉ. आम्बेडकर खुद करते थे। इसके माध्यम से वे अस्पृश्य समाज की समस्याओं और शिकायतों को सामने लाने का कार्य करते थे तथा अपने आलोचकों को जवाब भी देने का कार्य करते थे। पत्र के एक सम्पादकीय में उन्होंने लिखा कि यदि तिलक अछूतों के बीच पैदा होते तो यह नारा नहीं लगाते कि ''स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है'' बल्कि वह यह कहते कि ''छुआछूत का उन्मूलन मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है।'' इस पत्र ने भी दलित जागृति का महत्वपूर्ण कार्य किया।

'समता' पत्र का प्रकाशन 29 जून, 1928 को आरम्भ हुआ। यह पत्र डॉ. आम्बेडकर द्वारा समाज सुधार हेतु स्थापित संस्था 'समता संघ' का मुख पत्र था। पत्र में डॉ. आम्बेडकर समाज में समता से संबंधित अपने विचार प्रकाशित करवाते थे। उनका मानना था कि समाज के संसाधनों का बँटवारा सामान्य जन के आवश्यकताओं के अनुसार हो। यदि ऐसा होता है तभी भारत का सच्चा विकास हो पायेगा। पत्र के माध्यम से वे जनता की समस्या को जन-जन तक पहुँचा कर उन्हें

जागरुक बना समाज सुधार के काम में लगाया करते थे। सामान्य जन को वे भूखा नहीं देख सकते थे अतः इसी भूखी जनता के कष्टों के समाधान की वकालत किया करते थे।

'समता' पत्र बन्द होने के बाद डॉ. आम्बेडकर ने इसका पुन: प्रकाशन 'जनता' के नाम से किया। इसका प्रवेशांक 24 नवम्बर, 1930 को आया। पत्र के माध्यम से डा. आंबेडकर ने दलित समस्याओं को उठाने का बखूबी कार्य किया। 14 अक्टूबर, 1956 को बाबा साहेब डॉ. आम्बेडकर ने बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया। इसी के साथ ही 'जनता' पत्र का नाम बदलकर उन्होंने 'प्रबुद्ध भारत' कर दिया। इस पत्र के मुखशीर्ष पर 'अखिल भारतीय दलित फेडरेशन का मुखपत्र' प्रकाशित होता था।

बाबा साहेब डॉ. भीमराव आम्बेडकर के विषय में निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि वे भारतीय समाज को एक उन्नत समाज बनाना चाहते थे। जनता तथा शासक दल के पास अपनी बात कैसे पहुँचानी है वे यह भलीभाँति जानते थे। कदाचित यही कारण है कि उन्होंने अपनी लेखनी को ही अपने विचारों को अभिव्यक्त और प्रचार-प्रसार का माध्यम बनाया। ऐसे बहुत कम राजनीतिज्ञ और समाज सुधारक हुए हैं जो अपने विचार को लेखनी के माध्यम से व्यक्त करते हैं। 'आम्बेडकरवाद सामाजिक, राजनितीक तथा धार्मिक विचारधारा है।'[6] डॉ. आम्बेडकर के संघर्षमय जीवन के विषय में जान कर ऐसा लगता है कि वे सच्चे अर्थों में मानव भक्त व्यक्ति थे। उनका मानना था कि समाज का विकास तब तक नहीं हो सकता जब तक गरीब जनता का विकास नहीं होता। भारत में व्याप्त आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक समस्याओं का चित्रण उन्होंने अपने लेखन में किया है तथा उन समस्याओं के समाधान के अपना मत भी प्रकाशित किया था।

संदर्भ

1. बाबा साहेब डॉ. आम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय, खण्ड-1, पृ. 35

2. वही, पृ. 99

3. बाबा साहेब डॉ. आम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय, खण्ड-15, पृ. 10

4. डॉ. बाबा साहेब आम्बेडकर-जीवन चरित, धनंजय कीर, हिन्दी अनुवाद-गजानन सुर्वे, पृ. 387

5.https://www.forwardpress.in/2017/02/baba-sahab-dr-ambedkar-ka-srijnatmak-sahity/

6.https://hi.wikipedia.org/wiki

ऋषिकेश श्रीवास्तव

शोधार्थी

हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़

दूरभाष- 9851667716

कश्मीर-ए-दास्तान

डॉ. सचिन कुमार
डॉक्टरेट- हिन्दी विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्व-विद्यालय अलीगढ़

कश्मीर भारत का सबसे प्राचीन प्रदेश है जो उत्तर भारत में हिमालय पर्वत शृंखला के सबसे ऊपरी हिस्से में स्थित प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण है। इसको दुनियां का स्वर्ग भी कहा जाता है। यह क्षेत्र जम्मू, कश्मीर घाटी और लद्दाख तीन संभागों में विभाजित है जो अधिकांश पर्वत, नदियों और झीलों से ढका हुआ राज्य है। कश्मीर की संस्कृति कई संस्कृतियों का एक मिश्रण है। अपनी प्राकृतिक सुंदरता के साथ-साथ कश्मीर अपनी सांस्कृतिक विरासत के लिए प्रसिद्ध है। यहां मुस्लिम, हिन्दू, सिख, और बौद्ध दर्शन एक साथ मिलकर एक समग्र संस्कृति का निमार्ण करते हैं जो मानवतावाद और सहिष्णुता के मूल्यों पर आधारित है एवं सम्मिलित रूप से कश्मीरियत के नाम से जाना जाता है। कश्मीर का असली नाम सतीसर या सती-सरोवर है, क्योंकि यहाँ मां सती प्रतिदिन नौकायन किया करती थीं। सरोवर में जलोद्भव नामक दैत्य होने के कारण महर्षि कश्यप ने इसको मराने के लिए तपस्या की, देवता प्रसन्न हुए उन्होंने दैत्य को मारने के लिए शारिका भगवती को भेजा। शारिका ने सारिका का रूप लेकर चोंच में एक कंकर भरकर उड़ते हुए दैत्य पर फेंका। कंकर लगते ही जलोद्भव दैत्य मर गया और उस कंकर ने एक पहाड़ी का आकार ले लिया जिसको 'हरि-पर्वत' कहा जाता है। सरोवर का सारा पानी खादनयार के निकट एक दरार से बह गया और नीचे से जमीन दिखने लगी। तब से या भूखण्ड महर्षि कश्यप के नाम से पहले कश्यपमर तथा बाद में कश्मीर कहा जाने

लगा। अनेक जातियाँ, संस्कृतियों व भाषाओं का संगम बना यह प्रदेश एक खूबसूरत पर्यटन स्थल भी है।

अगर फिरदौस बर रू ए ज़मीन अस्त,

हमीन अस्त-ओ हमीन अस्त-ओ हमीन अस्त।

ये वो शब्द हैं जिनका इस्तेमाल अमीर खुसरो ने कश्मीर का वर्णन करने के लिए किए थे। यह कश्मीर को स्वर्ग के रूप में संदर्भित करने वाला पहला संदर्भ है जिसका अर्थ है 'यदि धरती पर कहीं स्वर्ग है तो वो यहीं है यहीं है और यहीं है' कश्मीर जाने वाले हर पर्यटक के मन से कश्मीर की नैसर्गिक सुंदरता देखने के बाद बस यही शब्द निकलते हैं। वर्ष 2018 में जब मैं और मेरा मित्र कश्मीर विश्विद्यालय में असिस्टेंट प्रोफेसर का इंटरव्यूं देने गए उस समय हमकों पहली बार कश्मीर घूमने का सौभाग्य मिला। एक तरफ जहाँ जम्मू मंदिरों और सुंदर बगीचों का क्षेत्र है वहीं कश्मीर सुंदर घाटी, झीलों, ऊंचे रास्तों के लिए प्रसिद्ध है तो वहीं लेह-लद्दाख भी अपनी नैसर्गिग सुंदरता, प्राचीन मठों तथा तिब्बती बौद्ध बिहारों के लिए प्रसिद्ध है। वैसे तो जम्मू-कश्मीर और लेह में हर धर्म के लोग रहते हैं परंतु जम्मू क्षेत्र हिन्दू बहुल और कश्मीर मुस्लिम बहुल क्षेत्र के रूप में जाना जाता है। इसके अतिरिक्त लेह लद्दाख अपने बौद्ध स्मारकों के लिए विश्व प्रसिद्ध है, जहां बौद्ध धर्म के अनुयायी रहते है। जम्मू-कश्मीर में सिख संप्रदाय को मानने वाले लोग भी रहते हैं जो व्यवसाय करते हैं, इस तरह देखा जाए तो यहां हर धर्म को मानने वाले लोग मिलजुल कर रहते हैं।

लेकिन इसके अतिरिक्त कश्मीर की एक कहानी और भी है जो सैकड़ो साल पुरानी है इसका गौरवशाली इतिहास इसकी पहचान है। सन् 1846 में अग्रेजों द्वारा सिखों की पराजय हुई जिसका परिणाम था लाहौर संधि। अग्रेजों द्वारा महाराज गुलाब सिंह को कश्मीर का स्वतंत्र राजा बनाया गया। महाराजा गुलाब सिंह के बाद इनके सबसे बड़े पौत्र महाराज हरीसिंह 1925 ई0 में गद्दी पर बैठे जिन्हौंने 1947 ई0 तक शासन किया। ब्रिटिश शासन की समाप्ति के साथ ही जम्मू और कश्मीर भी आज़ाद हुआ। शुरू में महाराज हरीसिंह ने फैसला किया कि वह भारत या

पाकिस्तान में सम्मिलित न होकर स्वतंत्र रहेंगे, लेकिन 20 अक्टूबर 1947 को पाकिस्तान समर्थक आज़ाद कश्मीर सेना ने कश्मीर राज्य पर आक्रमण कर दिया, जिससे हतोत्साहित होकर महाराज हरीसिंह ने राज्य को भारत में मिलाने का फैसला लिया। उस विलय पत्र पर 26 अक्टूबर 1947 को पण्डित जवाहरलाल नेहरू और महाराज हरीसिंह ने हस्ताक्षर किए। इस विलय पत्र के अनुसार - राज्य केवल तीन विषयों- रक्षा, विदेशी मामले और संचार पर अपना अधिकार नहीं रखेगा, बाकी सभी पर उसका नियत्रंण होगा। उस समय भारत सरकार ने आश्वासन दिया कि इस राज्य के लोग अपने स्वयं के संविधान द्वारा राज्य पर भारतीय संघ के अधिकार क्षेत्र को निर्धारित करेंगे। जब तक राज्य विधान सभा द्वारा भारत के फैसले पर मुहर नहीं लग जाती तब तक भारत का संविधान राज्य के संबंध में केवल अंतरिम व्यवस्था कर सकता है। इसी क्रम में भारतीय संविधान में अनुच्छेद 370 जोड़ा गया, जिसमें बताया गया कि जम्मू-कश्मीर से सम्बंधित राज्य उपबन्ध केवल अस्थायी है, स्थाई नहीं। लेकिन 1947 के बाद उस गौरवशाली इतिहास पर आंतक की ऐसी लकीर खींच दी गई कि कश्मीर का स्वरूप हमेशा के लिए बदल गया, हक के लिए लड़ता कश्मीरी, सड़कों पर तैनात सुरक्षाबल और पाकिस्तान की नापाक साजिशें, घाटी की ये पहचान बन गई, आज़ादी के 75 साल बाद कश्मीर की उस पहचान को बदलने के लिए इतिहास फिर गढ़ा गया और खत्म हुआ अनुच्छेद 370 यही है कश्मीर -ए-दास्तान: 1947-2021

डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी का ‘एकदेश, एक विधान, एक प्रधान‘ का संकल्प आज़ादी के 75 साल बाद पूरा हो पाया है तो अनुच्छेद 370 और 35ए से आज़ादी के बाद धरती का स्वर्ग कहा जाने वाला जम्मू-कश्मीर और लद्दाख अब देश के बाकी हिस्से के साथ विकास की राह पर आगे बढ़ रहा है। दशकों के फासले को कम करते हुए भारत सरकार ने विकास की दौड़ मे पीछे छूट रहे जम्मू-कश्मीर और लद्दाख से अनुच्छेद 370 के प्रावधानों को निरस्त कर 75 साल की टीस को खत्म करके अब उसे मुख्यधारा से जोड़कर देश के अन्य राज्यों के बराबर लाकर

खड़ा किया है। करीब तीन-चार साल से ही ये क्षेत्र विकास के नए सफर पर निकल पड़ा है। केंद्र सरकार के 170 कानून जो पहले लागू नहीं थे, अब वे इस क्षेत्र में लागू कर दिए गए हैं। जम्मू-कश्मीर और लद्दाख के साथ भारत के अन्य राज्यों से अलग व्यवहार किया जाता था। इसी वज़ह से इस राज्य की मुख्यधारा से दूरी थी।

मुख्य धारा से दूरी होने के कारण कश्मीर मूलतः अहिन्दी भाषी प्रदेश है। अहिन्दी भाषी प्रदेश से हमारा अभिप्राय ऐसे क्षेत्र से है, जहाँ हिन्दी मातृभाषा के रूप में न बोलकर अन्य भाषा के रूप में प्रयोग में लाई जाती है। इस राज्य के तीन प्रमुख क्षेत्र है- जम्मू, कश्मीर और लद्दाख। जम्मू क्षेत्र की प्रमुख भाषा डोगरी है, कश्मीर घाटी की कश्मीरी तथा लद्दाख में लद्दाखी प्रमुख रूप से बोली जाती है। इन भाषाओं के अतिरिक्त राज्य में कई बोलियां भी बोली जाती हैं।

कश्मीर घाटी और आसपास की पहाड़ियों में कश्मीरी (कोशुर) भाषा बोली जाती है। यह भाषा एक भारतीय-आर्य भाषा है जो मुख्यतः कश्मीर की वितस्ता घाटी के अतिरिक्त उत्तर में ज़ोजीला और बर्ज़ल तक तथा दक्षिण में बानहाल से परे किश्तवाड़ तक बोली जाती है। किश्तवाड़ की प्रधान उपभाषा 'कश्तवाडी' है। कश्मीरी भाषा के लिए शारदा, देवनागरी, रोमन, और परशो-अरबी लिपियों का उपयोग किया जाता है। कश्मीर घाटी के उत्तर और पश्चिम में बोली जाने वाली भाषाएँ हैं- दर्ददी, श्रीन्या, कोहवाड़, यह कश्मीरी भाषा के उलट थीं। यह भाषा इण्डो-आर्यन और हिन्दुस्तानी-ईरानी भाषा के समान हैं।

कश्मीरी का स्थानीय नाम 'काशुर' है, पर 17 वीं शती तक इसके लिए 'भाषा' या 'देशभाषा' नाम ही प्रचलित रहा। संभवतः अन्य प्रदेशों में इसे कश्मीरी भाषा के नाम से ही पुकारा जाता है। ऐतिहासिक दृष्टि से इस नाम का सबसे पहला निर्देश अमीर खुसरों ने किया। 15 वीं शती तक कश्मीरी भाषा केवल शारदा लिपि में लिखी जाती थी। बाद में फारसी लिपि का प्रचलन बढ़ता गया और अब इसी का एक अनुकूलित रूप स्थिर हो चुका है। देवनागरी लिपि को अपनाने के प्रयोग भी होते रहे हैं और आजकल यह देवनागरी लिपि में भी लिखी जा रही है।

केन्द्र सरकार ने जम्मू-कश्मीर में स्थानीय भाषाओं के संरक्षण के लिए एक बड़ा अहम फैसला किया है जिसके बाद अब हिन्दी भी जम्मू-कश्मीर की आधिकारिक भाषा होगी। इस फैसले को केन्द्रीय कैबिनेट की बैठक में मंजूरी दे दी गई। प्रदेश में अब कश्मीरी, डोगरी, हिन्दी, अंग्रेजी और उर्दू भाषाओं को राजभाषा का दर्जा दिया गया है। 5 अगस्त 2019 के बाद से ही राज्य में इन भाषाओं को आधिकारिक राजभाषा बनाने की मांग जारी थी। सरकार ने यह फैसला जम्मू-कश्मीर के पुनर्गठन के बाद राज्य में समानता लाने के संदेश के साथ किया है।

कश्मीरी साहित्य कश्मीरी भाषा का रचना संसार है। सम्भवतः शैव सिद्धों ने पहले कश्मीरी को शैव दर्शन का लोक सुलभ माध्यम बनाया और बाद में धीरे-धीरे इसका लोक साहित्य भी लिखित रूप धारण करता गया। किन्तु राष्ट्रीय और सांस्कृतिक आश्रय से निरंतर वंचित रहने के कारण इसकी क्षमताओं का भरपूर विकास दीर्घ काल तक रूका ही रहा। कश्मीरी भाषा का एक सतत साहित्यिक इतिहास है, जो 13वीं शताब्दी से जारी है। इस भाषा की साहित्यिक संस्कृति के विकास के लिए कोई गम्भीर राजनीतिक या साहित्यिक संरक्षण न मिलने के बावजूद यह अब भी बरक़रार है। इस भाषा का प्रधान स्त्रोत 1932 में ग्रियर्सन द्वारा मुकुंदराम शास्त्री के सहयोग से संकलित 1252 पृष्ठों का शब्दकोश है, जो समकालीन न होते हुए भी उपयोगी शब्द संग्रह है, जिसमें रोमन, देवनागरी, और कभी-कभी फ़ारसी-अरबी लिपियों में शब्द लिए गए है। राज्य की कला, संस्कृति और भाषा अकादमी ने अन्य शब्दकोश भी प्रकाशित किए हैं, जो एकभाषी व द्विभाषी दोनों हैं। कश्मीरी साहित्य में साहित्यिक सृजनशीलता की शुरूआत श्रीकान्त आचार्य की कृति 'महानाय प्रकाश' से मानी जाती है।

कश्मीर के साहित्य का एक लंबा इतिहास रहा है जिसमें सबसे पुराने ग्रंथ संस्कृत भाषा में लिखे गए है। भारतीय साहित्य में जन्मू और कश्मीर का अवदान अप्रतिम है। तेरहवीं शताब्दी तक कश्मीर में संस्कृत काव्य-चिंतन अबाध गति से चलता रहा। मुस्लिम शासनकाल में कश्मीर ने फारसी साहित्य और उर्दू अदब के निर्माण में

योगदान दिया। डोगरी और कश्मीरी तो जम्मू-कश्मीर की मुख्य भाषाएं ही हैं जिनमें बहुत मूल्यवान साहित्य रचा गया। बत्ती, पहाड़ी, पंजाबी, गुजरी और दरद (शीना) भी इस क्षेत्र की मुख्य भाषाएं हैं। संसद द्वारा जम्मू-कश्मीर राजभाषा विधेयक पारित करके पाँच भाषाओं - कश्मीरी, डोगरी, उर्दू, अंग्रेजी, और हिन्दी को जन्मू-कश्मीर की राजभाषा बना दिया गया। इससे अब तक उपेक्षित रही कश्मीरी तथा डोगरी जैसी भाषाओं को पहली बार न्याय मिला।

संदर्भ ग्रंथ

1. कश्मीर इतिहास और परंम्परा, कुमार निर्मलेन्दु, लोकभारती प्रकाशन दिल्ली।
2. जन्मू-कश्मीर सच तो यही है, डॉ. आशा नैथानी दायमा, प्रभात प्रकाशन दिल्ली।
3. जम्मू-कश्मीर की अनकही कहानी, कुलदीप चंद अग्निहोत्री, प्रभात प्रकाशन दिल्ली।
4. कश्मीरनामा इतिहास और समकाल, अशोक कुमार पाण्डेय, राजपाल प्रकाशन दिल्ली।
5. कश्मीर भाषा और साहित्य, डॉ. शिबन कृष्ण रेणा, संमार्ग प्रकाशन दिल्ली।
6. विभिन्न पत्र-पत्रिकाएं।

संपर्क

contact 9027388806

email:sachindr01gmail.com

कश्मीरी लोक संस्कृति चंद्रकांता के उपन्यासों के विशेष सन्दर्भ में

डॉ. नसरीन जान

'लोक' अंग्रेज़ी के फोक शब्द का सर्वमान्य हिन्दी शब्द है। हिन्दी भाषा में लोक शब्द के लिए 'लोग' भी प्रयुक्त होता है जिसका अभिप्राय सामान्य जनता से है। इसकी व्यक्तिगत पहचान न होकर सामूहिक पहचान है। डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय लोक को परिभाषित करते हुए लिखते हैं- "जो लोग संस्कृत या परिष्कृत वर्ग से प्रभावित न होकर अपनी पुरातन स्थितियों में ही रहते हैं वे लोक होता है।"[1] दूसरे शब्दों में लोक वह लोग है जो अपनी परम्पराओं में प्रचलित रीतिरिवाज, खान-पान, रहन-सहन, लेन-देन और आदिम विश्वासों के प्रति आस्थाशील होने से अशिकक्षित कहलाते है।

संस्कृति का अर्थ परिष्कृत करना है। व्यापक अर्थ में देखे तो सीखे हुए व्यवहार का नाम ही संस्कृति है। संस्कृति जीवन की प्रवृत्तियों से सम्बंधित होने के साथ-साथ तत्त्वों का बोध भी कराती है। ओम प्रकाश सेठी के शब्दों में- "धर्म, दर्शन, कला, साहित्य, विज्ञान और रीति-रिवाज आदि के समंवित रूप को संस्कृति कहते हैं।" [2]

लोक और संस्कृति एक दूसरे से अभिन्न रूप से जुड़े हैं। एक के बिना दूसरे के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। लोक जीवन को ही यदि लोक संस्कृति कहें तो गलत नहीं होगा। शोषित, दलित, दीन-हीन, जंगली जातियाँ, कोल, भील, संथाल, नाग, हूण, इत्यादि सब लोक समुदाय का मिला जुला रूप है। इन सबकी मिली जुली संस्कृति लोक संस्कृति कहलाती है। लोक जीवन के पग-पग पर हमें लोक संस्कृति के दर्शन होते है। लोक संस्कृति के भीतर करुणा, सहानुभूति, मैत्री, परोपकार आदि भावों का व्यापक संसार समाया हुआ हैं। संसार को अधिक मानवीय बनाने में लोक संस्कृति का बड़ा योगदान है। भारतीय लोक संस्कृति की आत्मा साधारण लोग हैं जो नगरों से दूर गाँवों और जंगलों में निवास करती हैं।

भारत में लोक संस्कृति की धारा आदिकाल से ही प्रवाहित होती चली आ रही है। भारतीय संस्कृति के भीतर लोक में प्रचलित विभिन्न साहित्य रूप कभी भी उपेक्षित नहीं हुए हैं। लोकगीत, लोक कथा, लोक नाट्य, लोक कला, लोक संगीत, मुहावरे, पहेलियाँ, इत्यादि सदा ही लोकचित से छनकर उच्च साहित्यिक एवं शास्त्रीय धरातल पर पहुंचते रहे हैं। प्रत्येक युग के साहित्यकार ने अपने साहित्य में जन जीवन को स्थान दिया है। हिन्दी कथा साहित्य में लोक जीवन के चित्र हमें प्रारम्भ से ही प्राप्त होते रहे हैं। यह धारा कहीं भी क्रमहीन नहीं हुई है।

प्रत्येक क्षेत्र की अपनी लोक संस्कृति के कुछ महत्त्वपूर्ण बिंदू होते हैं जैसे कि वहाँ का स्थापत्य, भौगोलिक परिवेश, जन-जीवन, बोली आदि जिनके आधार पर क्षेत्र-विशेष की लोक संस्कृति के संग्रह का मूल्यांकन किया जा सकता है। कश्मीर क्षेत्र की लोक संस्कृति और जन जीवन के इन महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं को कुछ साहित्यकारों ने अपने साहित्य में स्थान दिया है जैसे कि मीरा कांत, श्री कृष्ण राजदान, मोहन निराश, डॉ. रतन लाल शांत, डॉ. सोमनाथ कौल इत्यादि। इन्हीं में से एक नाम चंद्रकांता जी का भी है।

चंद्रकान्ता कश्मीर में जन्मी तथा यहां के सुंदर व स्वच्च्छ वातावरण में पली-बढ़ी है, अपनी कश्मीरी संस्कृति व सभ्यता से प्रभावित होकर इन्होंने अपने कथा साहित्य में इसे अपने प्रिय विषय के रूप में प्रस्तुत किया हैं। इन्होंने अपने तीन उपन्यासों- 'ऐलान गली जिन्दा है, 'यहां वितस्ता बहती है' तथा 'कथा सतीसर' और कहानी संग्रह- 'कोठे पर कागा', 'सूरज उगने तक', 'कालीबर्फ' आदि में कश्मीर की विशेष लोक सांस्कृतिक परम्परा को हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। किंतु यहाँ उनके सम्पूर्ण कथा साहित्य को न लेकर केवल उनके उपन्यास साहित्य की ही चर्चा करेंगे जिसमें उन्होंने कश्मीरी लोक जीवन के रीति-रिवाज, रहन-सहन, लोकगीत, लोक विश्वास, लोक भाषा आदि सांस्कृतिक पहलुओं पर प्रकाश डाला है।

कश्मीर की संस्कृति किसी एक विशेष धर्म, वर्ग या समाज की संस्कृति न होकर अनेक जातियों एवं धर्मों की संस्कृति है जो अपनी एक भिन्न पहचान और अस्तित्व रखती है। प्राचीन काल से ही कश्मीर विभिन्न जातियों एवं धर्मों का केन्द्र रहा है तथा इन्हीं जातियों अथवा वर्गों के आते-जाते, आदान-प्रदान, आचार-विचार से जो संस्कृति विकसित हुई है, वही कश्मीरी संस्कृति है।

चन्द्रकान्ता ने 'कथा सतीसर' में कश्मीर के प्राचीन युग का विस्तृत वर्णन इस प्रकार से किया है "इस कथा में भूमि के बीच छह योजन लम्बे और तीन योजन चौडे सतीसर का जिक्र है; जिस में कालान्तर में ब्रह्मा से अमरत्व का वर प्राप्त जलोदभव राक्षस सुरक्षा के लिए रहने लगा। जलोदभव अब अपनी राक्षसी वृत्तियों के कारण किनारों पर रहते नाग, निषाद, दर्द, भुट, यक्ष आदि आदिवासी जातियों का संहार करने लगा तो भीषण यंत्रणाओं से त्रस्त राजा नील ने जो उन दिनों नागों का राजा था पिता कश्यप ऋषि के पास 'कनखला' जाकर अरदास की कि उन्हें जलोदभव से मुक्ति दिलाई जाए"।[3] इस प्रकार से फिर कश्यप ऋषि ने बारामूला के निकट पहाड को काट कर 'सतीसर' से पानी को निकाल दिया और जलोदभव का अन्त हुआ। कहा जाता है कि कश्यप ऋषि के प्रयासों से ही वादी का जन्म हुआ। उन्हीं के नाम पर वादी का नाम कशयमर रखा गया जो फिर कश्मीर बना। इस कथा में कितनी सच्चाई है यह और बात है परंतु कश्मीर के प्राचीन इतिहास के साथ इसे जोड़ा जाता आ रहा है।

लेखिका ने जहां अपने कथा साहित्य में कश्मीर के प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण स्थान-स्थान पर किया है वहीं पर कश्मीर के कई ऐतिहासिक स्थलों का भी वर्णन किया है जिन्में मुगल शासकों द्वारा बनाए गए मुगल बागात (निशात, शालिमार), परी महल, तथा प्राचीन काल में बने मन्दिरों-मस्जिदों तथा अन्य धार्मिक स्थलों की भी चर्चा की है- 'एक मार्तण्ड का मंदिर नहीं, अन्तेश्वर का मन्दिर देखा वितस्ता के किनारे।"[4] इसी प्रकार से हारी पर्वत का वर्णन इनके तीनों उपन्यासों

में देखने को मिलता है। "उत्तर दिशा में हारी पर्वत की गिरिमालाओं पर किले को घेरती दूर तक फैली दीवार नजर आएगी।"[5]

चन्द्रकान्ता के तीनों उपन्यासों 'ऐलान गली जिन्दा है', 'यहां वितस्ता बहती है', तथा 'कथा सतीसर' में कश्मीरी लोक कथाओं का चित्रण देखने को मिलता है। इन कथाओं को लेखिका ने विशेष रूप से सास-बहू के सम्बंध या प्रेम प्रसंग के साथ जोड़ा है। इन लोक कथाओं के उद्धरण यहां की नारी की स्थिति को दर्शाती है। 'कथा सतीसर' से एक उदाहरण दृष्टव्य है- "सास तो सास कात्यायनी। क्या कहें ? युग-युग से तो ऐसा ही होता आया है। रूप भवानी की सास, हब्बाखातून की सास भी तो बहुओं के प्रति कठोर थीं लल्लद्द्द की सास।"[6]

रीति-रिवाज तथा अन्य धार्मिक एवं सामाजिक संस्कार किसी भी समाज की संस्कृति के अभिन्न अंग होते हैं। चन्द्रकान्ता ने यद्यपि अपने उपन्यासों में विशेष रूप से कश्मीरी पण्डितों के ही रीति-रिवाजों और संस्कारों का चित्रण किया हैं परंतु इनमें कुछ रीति-रिवाज ऐसे भी है जो यहां के हिन्दू और मुसलमानों में एक जैसे हैं। यथा बच्चों के जन्म लेने के उपरांत उसका स्नान और फिर मुण्डन करने की रस्म यहाँ के हिन्दू तथा मुसलमान दोनों लगभग एक ही प्रकार से करते है। लेखिका ने 'ऐलान गली जिन्दा है' में इस रस्म का दृश्य अत्यंत सजीव ढंग से प्रस्तुत किया है- "वह अक्सर अकेले में अवतारे को प्यार करती। उसके लिए जन्म से लेकर विवाह तक के संस्कार मन ही मन सम्पन्न करती। 'गूर गूर करयो बाल गूपालों', उसकी आखों के आगे गोपाल सा अवतार हमेशा मौजूद रहता। जन्म के सातवें दिन वह प्रसूति का पहला स्नान व बच्चे का नामकरण करती, 'सतिमे दो हय सौंदर करमय, वाजस घुलिमय पाने फर्माश"[7] अर्थात् सौन्दर के अवसर पर मैं रसोई को स्वयं ही बुला लायी पकवान बनाने के लिए।

इसी प्रकार से विवाह के अवसर पर मंगल गीत, विदाई गीत, बच्चा नगमा, गिन्दनगोर, साजिन्दों के साथ तुम्कनारियों पर 'छकरी' और 'रोव' करने की रस्म का चित्रण भी लेखिका ने यथार्थपूर्ण रूप से किया है। उदाहरणत: 'ऐलान गली

जिन्दा है' में अवतारे के विवाह के अवसर पर गाए जाने मंगल गीत का उल्लेख लेखिका ने इस प्रकार से किया है-"सों शुक्लम करिथय वनवुन हयोतुथय, जंगि कुस ओयेय महागणपत, के मंगलगीत गाकर घर की लिपाई-पुताई शुरु हो गई। मेंहदी रात में रात भर 'छक्करी' गाकर 'रोव' करके महिलाओं ने अवतारे को मेंहदी रचायी। मुबारक बादें दी गयीं।"[8]

इसी प्रकार से 'कथा सतीसर' में विवाह के अवसर पर किए जाने वाले बाँडपाथर का चित्रण लेखिका ने इस प्रकार से किया है- "महदे ने गांव से नचनी टोली बुलाई थी। लडीशाह ने शार सुनाए। बाँडपाथर देखकर औरते हंस-हंस कर लोटपोट हो गई।"[9]

सूफियाना संगीत का वर्णन लेखिका ने अपने तीन उपन्यासों- 'ऐलान गली जिन्दा है, 'यहां वितस्ता बहती है तथा कथा सतीतर' में भिन्न-भिन्न अवसरों पर किया है। यथा 'कथा सतीसर' में सूफियाना संगीत का चित्रण चंद्रकान्ता ने इस प्रकार से किया हैं- 'धरती आकाश के मदस्त रंगों के बीच सुबहान मल्लाह के गले से सूफियाना कलाम फूट पड़ता- डेकि छुस डेक टिक कनन कनवसली माशूक अज यियि सअलीए।"[10]

चंद्रकान्ता ने अपने कथा साहित्य में कश्मीरी व्यंजनों तथा खानपान की अन्य वस्तुओं का चित्रण विस्तार से किया है। उन्होंने विवाह जैसे शुभ अवसर पर पकाए जाने वाले व्यंजनों जिसे कश्मीरी में 'वाजवान' कहा जाता है का चित्रण अपने तीनों उपन्यासों में कई स्थानों पर किया है। 'यहाँ वितस्ता बहती है' से एक उदाहरण दृष्टव्य है- "कभी घर में दावत हुई, बड़े-बड़े अफसरों की तो मुझे ही दस काम सौपें जाते। गुलकाका यह करो गुलकाका वह करो। वो बड़ी-बड़ी देगो-हंडों में खाना पकाता। शामी कबाब, गोशताबा, रिस्त, तबकनाट।"[11]

लेखिका ने अपने साहित्य में कश्मीर से सम्बंधित सभी प्रमुख त्यौहारों चाहे वह हिन्दुओं के हो या मुसलमानों के सभी का प्रसंगानुकूल चित्रण किया है। इनके कथा साहित्य में दीपावली, नवरोज, शिव रात्री, सरस्वती पूजा, ईद, मुहरम आदि के

उदाहरण कई स्थानों पर देखने को मिलतें हैं। यथा- “मुहरम का जुलूस सभी से अलग किस्म का रहता। हुजूम लोग हुसैन हुसैन, मौला हुसैन, आका हुसैन, पुकारते रोते, छाती पीटते, ताजियों के साथ-साथ चलते।”[12]

“पोष मास में हिन्दू घरों में खिचड़ी आमवस्या मनती। खूब सा घी का बघार दे चावल मूंग की स्वादिष्ट खिचड़ी बनाई जाती है।”[13]

चंद्रकान्ता ने अपने कथा साहित्य में बिना किसी झिझक के, अत्यंत गर्व से न केवल कश्मीरी भाषा का बल्कि कश्मीरी मुहावरों, कहावतों और पहेलियों का भी भरपूर प्रयोग किया है। उदाहरणत:-

‘हलि ति श्राख त बलिति श्राख’

‘यसिय ब जास, तेसिय ब टोठ, युसुय मे जाव माय टोठ

‘घर वंदहय घर सासा बर नेरिहयन जाह

इनके अतिरिक्त लेखका ने कश्मीर की शीत ऋतु में प्रयोग में लाई जाने वाली वेशभूषा तथा अन्य वस्तुओं का वर्णन भी किया है- “बर्फबारी में भी बच्चें फिरन, कन्टोपे, दस्ताने और फिरन के भीतर छोटी कांगड़ी से लैस पाठशाला में उपस्थित हो जाते।”[14]

कुल मिला कर कह सकते हैं कि चंद्रकान्ता कश्मीर से पलायन करने के पश्चात भी वह अपने उपन्यास साहित्य में यहाँ की लोक संस्कृति पर प्रकाश डालने में बहुत सफल हुई हैं। उन्होंने अपने साहित्य में जिस प्रकार से कश्मीरी लोक रंग को उभारा है वह अत्यंत प्रशंसनीय है।

सहायक ग्रंथ सूची:

1. खुराना, (डॉ.) वर्षा. *लोक साहित्य*, पृ.317
2. https://abhivyakti.life/2019/04/05/hindi-lok-sahitya-sanskritik
3. चंद्रकांता. *कथा सतीसर*, सं.2001, पृ.13

4. ---.*यहां वितस्ता बहती है*, सं.1992, पृ.01
5. वही, पृ.13
6. चंद्रकांता.*कथा सतीसर*, सं.2001, पृ.403
7. ---. *ऐलान गली ज़िंदा है*, सं.1984, पृ.105
8. वही, पृ.197
9. चंद्रकांता. *कथा सतीसर*, सं. 2001, पृ.199
10. वही, पृ. 203
11. चंद्रकांता. *यहां वितस्ता बहती है*, सं.1992, पृ.33
12. ---,*कथा सतीसर*, सं .2001, पृ.138
13. वही , पृ.156
14. चंद्रकांता. *ऐलान गली ज़िंदा है*, सं.1984, पृ.23

पुष्टि मार्ग और कश्मीर के नवधा साधक

-नसरीन अली 'निधि'

कृष्ण भक्ति परम्परा बहुत पुरानी है। कृष्ण भावना विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न रूप धारण करती हुई तामिल देश के आलवार भक्तों तक गई। आलोचकों एवं इतिहासकारों ने इस विश्वास का सर्वथा समर्थन किया है कि उत्तर भारत में ज्ञान, योग और भक्ति की जो विभिन्न धाराएँ प्रवाहित हुई थी वे दक्षिण भारत से ही उत्तर भारत में प्रवाहित होती रही। उत्तर भारत में शक्ति का एक क्षीण अस्तित्व प्राचीनकाल में भागवत धर्म के रूप में विद्यमान रहा, पर उसका दक्षिण भारत में व्यापक प्रचार रहा। 12वीं-13वीं शताब्दी के लगभग दक्षिण भारत के प्रमुख आचार्यो- श्री रामानुचार्या, श्री विष्णुस्वामी, श्री निम्बार्काचार्य और श्री मध्वाचार्य आदि ने आलवार भक्तों से वैष्णव भक्ति ग्रहण कर उत्तर भारत में इसका प्रचार-प्रसार कर पुष्टि मार्ग चलाया। पुष्टि मार्ग के अनुसार-भगवान अपने भक्तों के लिए 'व्यापी बैकुण्ठ' में लीलाएँ करते हैं। किसी प्रकार इस लीला में प्रवेश पाना ही जीवन के लिए समस्या बनी रहती है। लीला को प्राप्त करने में केवल प्रेम लक्षण भक्ति ही सहायक है। इसे प्राप्त करने के लिए भगवन के अनुग्रह की आवश्यकता पड़ती है। इस आग्रह का नाम ही पुष्टि है।

जीव, पुष्टिमार्ग पर चलते हुए परमात्मा को कई रूपों में प्राप्त करता है। स्मरण, आत्मनिवेदन, वात्सल्य, साख्य आदि भावों के द्वारा कृष्ण को प्राप्त किया जा सकता है। कृष्ण भक्त के जिन साधकों ने पुष्टिमार्ग को ग्रहण किया उन्हें अष्ट्छाप समुदाय के नाम से जाना जाता है और उन साधकों में सूरदास, कुम्भनदास, कृष्णदास, परमानंद दास, छोतस्वामी, गोविंदस्वामी, चतुर्भुजदास, नंददास के नाम विख्यात हैं। इसके अलावा विभिन्न आचार्यों के विभिन्न मत जो विशिष्टद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैत और अचिंत्य भेदाभाव नाम से विख्यात है। इन आचार्यो ने जीव और जगत् की सत्यता पर प्रकाश डाला तथा राम एवं कृष्ण में विष्णु के विभिन्न

अवतारों की परिकल्पना कर उनकी शक्तियों के रूप में सीता और राधा के प्रति अगाथ विश्वास की भावना व्यक्त की।

वैष्णव भक्ति का उदगम स्त्रोत वैदिक वाङ्मय स्वीकार किया गया है। इसमें नवधा भक्ति की महत्तम कल्पना की गई है। इसका उल्लेख ऋग्वेद के मंत्रों में भी मिलता है। ऋग्वेद के सर्वप्रथम इंद्र ही प्रधान रहे, पर बाद में उसके स्थान पर विष्णु को प्राधान्य मिलने लगा। आगे चलकर विष्णु की संज्ञा "चराचर विश्व में व्यापक रहनेवाला" पड़ गयी। विष्णु के लिये "नारायाण" शब्द का भी प्रयोग मिलता है। नारायण के पश्चात् "वासुदेव" का उल्लेख भी मिलता है। पर, इन सूत्रों के माध्यम से कृष्णभक्ति की भावना के उदय पर प्रकाश नहीं डाला जा सकता है क्योंकि कृष्णभक्ति का संबंध पुराणों से है। नवधा भक्ति का उत्कृष्ट रूप पुराणों में वर्णित मिलता है। कृष्ण का माधुर्य स्वरूप, वात्सल्य, श्रृन्गार, साख्य आदि भावों का स्वरूप पुराणों से ही ग्रहण किया गया है। पुराणों में ही आध्यात्मिक लीलाओं के साथ लौकिक लीलाओं का समावेश श्रीकृष्ण में मिल जाता है। हरिवंशपुराण, वायुपुराण, भागवतपुराण, आदि ग्रंथ कृष्ण भक्ति में अधिक सहायक सिद्ध हुए।

संस्कृत-कृष्णा काव्यों में सर्वप्रथम कृष्ण की लीलाओं का उल्लेख अश्वधोष- रचित "बुद्धचरित" में मिलता है। हाल कृत (प्रथम शताब्दी) में कृष्णा, राधा, गोपियाँ ,यशोदा से सम्बद्ध अनेक गाथाएँ मिलती हैं। पाँचवी शताब्दी में दक्षिण भारत में आलवार भक्तों के सहयोग से वैष्णव भक्ति की उद्भावना मिलती है। भट्टनारायण ने अपने "वेणीसन्हार" नाटक में राधा-कृष्ण की प्रेम लीलाओं का वर्णन किया है। उसमें राधा के कुपित होने पर कृष्ण के अनुनय-विनय का उल्लेख है। नौवी शताब्दी की कृति "ध्वन्यालोक" में कृष्ण-राधिका की लीलाओं का साफ उल्लेख मिलता है। दसवीं शताब्दी में त्रिविक्रम रचित "नलचम्पू" में तथा "कवींद्रवचनसमुच्चय" में भी राधा-कृष्ण की क्रीड़ाओं से सम्बद्ध पद उपलब्ध हैं। बारहवीं शताब्दी में हेमचंद्र रचित "प्राकृतपैंगलम्" में राधा-कृष्ण सम्बंधित दोहों का संकलन मिलता है।

डॉ. व्रजेश्वर वर्मा ने इस संबंध में अपना मत लिखते हुए कहा है-"इस प्रकार आधुनिक भाषाओं में कृष्ण भक्ति साहित्य की रचना होने से पहले प्राकृत और संस्कृत साहित्य की लम्बी परम्परा थी। उस समय की रचनाओं में लोकगीतों और लोकगाथाओं से घनिष्ठ संबंध था और अधिकतर गीति तथा मुकत्तक के रूप में था। जो रचनाएँ प्रबंधकाव्य और नाट्य के रूप में हुई उनमें भी कदाचित गीति भावना प्रधान ही रही होगी। सम्भवत: इसी कारण संस्कृत साहित्य में उन्हें अधिक गौरव का स्थान नहीं मिल सका। परंतु आगे चलकर परिस्थितियाँ बदली जिसके फलस्वरूप काव्य की प्रेरणा, भावना, रूप और भाषा में आमूल परिवर्तन हो गया। इस परिवर्तन के क्रम में हिंदी-कृष्ण-काव्य को जन्म मिला, जिसकी प्रकृति मूलत:धार्मिक हैं।"

हिंदी में कृष्ण भक्ति-साहित्य की प्रासंगिक भूमिका के रूप में "गीत-गोविंद" को स्वीकार किया गया है। इसमें कृष्ण को नायक, राधा को नायिका और गोपी को लीलासहचरी माना गया है। इसके रचयिता 'जयदेव' ने इसे राधाकृष्ण के उद्दाम यौवन के अंकन पर भी "आध्यात्मिक कृति" कहा है। "गीतगोविंद" के रचनाकार "जयदेव" से "विद्धापति" पूर्णतः प्रभावित है। "विद्धापतिपदावली" कृष्णकाव्य के अंतर्गत होने पर भी मादक श्रृन्गार से ओत प्रोत है। कृष्णकाव्य के उत्कृष्ण हिंदी भक्त कवि सूरदास जी हैं। उनके सूरसागर को इतनी अधिक लोकप्रियता मिली कि कृष्ण काव्य की स्त्रोतस्विनी अजस्त्र रूप से प्रवाहित होती रही। पुष्टिमार्ग के अंतर्गत "अष्टछाप" के कवियों ने भी कृष्ण-काव्य की रचना कर कृष्ण भक्ति-साहित्य में ग्रंथों की कई कड़ियाँ जोड़ी।

सूरदास, कुम्भनदास, परमानंददास, कृष्णदास, छीतस्वामी, गोविंदस्वामी, चतुर्भुजदास, नन्ददास जो अष्टछाप के कवि थे। सदा कृष्णा के लीला गान में लगे रहे। कृष्ण को इस भक्ति में पुरूषेश्र्वर पुरूषोतम भगवन् माना जाता है। इस ब्रह्म ने अपनी इच्छा के अनुसार सृष्टि को जन्म दिया। इस ब्रह्म के सानिध्य के लिए प्रत्येक जीव को आतुर रहना चाहिए। गोपियों को इस काव्य में जीव और कृष्ण को ब्रह्म के

रूप में चित्रित किया गया। इसके अतिरिक्त राधापल्लवी सम्प्रदाय, हरिदासी सम्प्रदाय, गौड़ीय सम्प्रदाय तथा निम्बार्क-सम्प्रदाय के अंतर्गत दीक्षित भक्त कवियों ने भी कृष्णा भक्ति काव्य के विकास में सहयोग प्रदान किया। कृष्णभक्ति काव्य की अनन्य कवयित्री के रूप में मीराबाई का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनके पदों में भावना की एक रूपता है। समस्त पद विरह और वेदना के प्रकाशन में संलग्न हैं। इन्होंनें अपना समस्त अस्तित्व गिरिधर गोपाल पर ही न्योछवर कर दिया है। सूरजदास, मनमोहन तथा हरिराम व्यास ने भी प्रेम-भक्ति से सम्बद्ध सुंदर पदों की रचना की। नरोत्तम दास का "सुदामाचरित" भी इसी परम्परा का उल्लेखनीय ग्रंथ है।

अकबर के दरबारी कवियों में गंग, बीरबल और टोडरमल आदि भी कृष्णभक्त कवि हैं। रीतिकालीन कवियों में नागरीदास, अलबेली अलिजी, चाचा हितवृन्दावनदास, भगवतरसिक,ललित किशोरी, सहचरिशरण एवं आनंदघन के नाम उल्लेखनीय हैं। आधुनिक काल के कवियों में भारतेंन्दु हरिशचंद्र, जगन्नाथदास, रत्नाकर, सत्यनारायण कविरत्न, वियोगी हरि, अयोध्यासिंह उपाध्याय तथा मैथिलीशरण गुप्त के नाम विश्रुत हैं।

कश्मीर के इतिहास में कृष्ण भक्ति की धारा बड़ी ही रोचक है क्योकि स्वयं श्रीकृष्ण का सम्बंध कश्मीर से रहा लिखित इतिहास (महाभारत) ये दर्शाता है कि पांचाल नरेश जो कि पांचाली यानि द्रौपति के पिता थे और पांचल के नरेश रह चुके है। ये वही पीर पांचाल है जो जम्मू कश्मीर राज्य के किशतवाढ़ से लेकर मुज्जफराबाद का इलाका है। 3076 ई0 पूर्व जब महाभारत का युद्ध हुआ, उस युद्ध में यदुवंशियों द्वारा कश्मीर राज्य से युद्ध के लिए किसी को भी नहीं बुलाया गया था ब्लकि कश्मीर के नरेश गोनंद अपने ही एक संबंधी रिश्तेदार जरासंध का साथ देने यादवों के विरुद्ध युद्ध करने गये। गोनंद की यदुवंशियों द्वारा युद्ध में मृत्यु के बाद उनके पुत्र दामोदर यदुवंशियों के खिलाफ़ युद्ध के मैदान में उतरे और यदुवंशीयों द्वारा वीरगति को प्राप्त हुए। श्रीकृष्ण जो इस युद्ध के मुखिया रहे, कश्मीर राजा को परास्त

करने के बाद भी उन्होंनें कश्मीर राज्य को अपने अधीन नहीं किया क्योंकि मान्यता है कि कश्मीर, जो पहले एक झील "सतीसर" हुआ करता था, वो मातासती/पार्वती का स्वरूप या निवास माना जाता था। "नीलमतपुराण" जिसमें (6वीं शताब्दी के कश्मीर का इतिहास, भूगोल, धर्म, संस्कृति और रीती रिवाज का एक विश्वसनीय ग्रंथ है), कश्मीर को "शारदा भूमि" कहा गया है। सुप्रसिद्ध लेखक और इतिहासकार "कल्हण पंडित" ने भी 1148/49 में "राजतरंगिणी" लिखने से पहले "नीलमतपुराण" को आदर्श बनाया था इसीलिए श्रीकृष्ण ने दामोदर की गर्भवती विधवा यशोवती को राजगद्दी समर्पित कर ऐलान किया कि सभी यशोवती को राजमाता के रूप में स्वीकार करे। यूँ तो कश्मीर में भक्ति भाव का प्रचलन माँ ललेश्वरी / लल देद (1339-1400) के समय से हुआ जिसने इस भक्ति भाव को "वाख" (चार पंक्तियों की वाणी) में व्यक्त किया। उनके बाद माँ "रुप भवानी" और "शेखनूर-उ-द्दीन नुरानी" जिनको नंद ऋषि भी कहते हैं, आये लेकिन इन सब के विचार मौखिक थे, उन्होंने खुद कुछ भी लिखित नहीं रखा। इनके वाखों / वाणी /कथन को बाद में और लोंगों द्वारा लिखा गया। सन् 1448 ई. में जन्में भट्ट अवतार का जन्म भी कश्मीर घाटी में ही हुआ था। ये अपने समय के प्रसिद्ध विद्वान,कवि और संगीतज्ञ थे। इन्होंने कश्मीरी भाषा में सबसे पहले "बाणासुर-कथा" नामक खण्डकाव्य की रचना की थी, जिसमें श्रीकृष्ण के पुत्र अनिरुद्ध और उषा का प्रेम वर्णन, श्रीकृष्ण का बाणासुर पर ससैन्य आक्रमण, शिव-पार्वती का प्रादुर्भाव, बाणासुर का वध, श्रीकृष्ण की अपौरुषेय प्रतिभा के प्रति शिव की प्रशस्ति, विजयी कृष्ण का द्वारका गमन आदि कथाएँ वर्णित हैं। अवतार जी के इस काव्य में श्रीकृष्ण को एक वीर योद्धा के रुप में चर्चित किया गया है। इस काव्य की पाण्डुलिपि "भाण्डारकर शोधसंस्थान" पूना में सुरक्षित है। ऐसा माना जाता है कि इन्हें फिरदौसी का 'शाहनामा' कण्ठस्थ था।

कश्मीर में कृष्ण भक्ति भाव के चर्चित और अचर्चित कई नाम रहे इनमें से एक भक्ति भाव के कवि थे “साहेब कौल” जो आँरगज़ेब (1658-1707) के राज्य में रहे। कहा जाता है कि भट्ट अवतार के बाद कश्मीर की राजनैतिक स्तिथि में सत्ता को लेकर अनेक फेर बदल हुए। चकवंश की पराजय के बाद यहाँ की शासन-सत्ता मुगलों के हाथ में आ गई। मुगलों की राजभाषा फारसी थी। सत्ता द्वारा उनके पोषण और संरक्षण के कारण कश्मीर की लोकभाषा का विकास अवरुद्ध हो गया। शासक की अनुकुलता प्राप्त करने के लिए यहाँ के कवियों एवं लेखकों को अपनी मातृभाषा कश्मीरी से विरत होकर फारसी सीखने के लिए बाध्य होना पड़ा। साहिब कौल का जन्म सन् 1629 ई. में श्रीनगर के हब्बा कदल मुहल्ले में हुआ। कश्मीर और संस्कृत दोनों भाषाओं पर इनका समान अधिकार था। इनके पूर्वज “शाक्त एवं शैवमत” के अनुयायी थे और इन्होंने स्वयं शैवमत पर बहुत सी पुस्तकों के अलावा एक दर्जन से भी ज़्यादा संस्कृत भाषा में लेख और कविताएँ लिखी जिसमें उनके द्वारा रचित “कृष्णावतार चरित”, देवीनाम-विलास, शिवसिद्धि-नीति, और गुरुव्रतव-चिंतमणि उल्लेखनीय हैं। संस्कृत भाषा में वैष्णव मत सम्बंधी इनकी प्रमुख रचना “गीतासर” हैं। उन्होंने “रामावतार” को कश्मीरी भाषा में अनुवाद भी किया। कश्मीरी भाषा में लिखित इनकी चार काव्य-बद्ध रचनाओं का उल्लेख मिलता है- (1) कल्पवृक्ष (2) जन्म-चरित (3) श्रीकृष्णावतार-लीला (4) आत्म-चरित।

कल्पवृक्ष कश्मीरी भाषा की अत्यंत प्रौढ़ रचना है जिसमें कश्मीरी के अतिरिक्त संस्कृत,फारसी अरबी, पंजाबी, लद्दाखी आदि भाषाओं के प्रचुर शब्दों का प्रयोग हुआ है। “जन्म-चरित” में मानव-जीवन का रहस्य दार्शनिक शैली में निरुपित किया गया है।‘श्रीकृष्णावतार-लीला’ में भगवान कृष्ण के जीवन के परमार्थिक और लीलावतारी दोनों पक्षों के बीच सामंजस्य दिखाया है। इस लीला काव्य में श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर सुदामा से मिलने की कथा ली गई है। इन्हीं के समकालीन एक और भक्ति भाव के कवि थे, प्रकाश राम भट्ट, जो प्रकाश राम कुरगामी के नाम से

प्रसिद्ध थे क्योंकि वो कश्मीर में काज़िगुंड़ के निकट गाँव कुरीगाम से ताल्लुक रखते थे। कृष्ण भक्ति के कई भजनों के लिए वो जाने जाते हैं।

कश्मीर के एक और अचर्चित परंतु महान संत, कवि थे- स्वामी मिर्जा काक जिन्हें प्यार और आदर से लोग "काक साहिब" कहते थे, दक्षिण कश्मीर के अनंतनाग ज़िले के एक गाँव हन्गुल्गुंद" में 1744 ई0 को पैदा हुए। परिवार न होने के कारण वो हमेशा भक्ति भाव में ही लीन रहा करते थे। उनके द्वारा लिखे गये कृष्ण-भजन बड़े ही मनमोहक हैं। उनकी मृत्यु 1830 ई0 में हुई। सन् 1791 ई. में भक्ति रस / भाव के एक और अचर्चित पर महान कवि हुए, पंड़ित नंद राम उनका पूरा नाम परमानंद था। उनका जन्म दक्षिण कश्मीर के मटन / मरतंड के समीप एक गाँव सीर में हुआ। वो संस्कृत, हिंदी और फ़ारसी भाषा के ज्ञानी थे और फ़ारसी भाषा की उनकी रचना जिसमें छंद और दोहे हैं "गरीब" उपनाम से लिखते रहे। शुरूआती दिनों में वे पटवारी का काम किया करते थे। उनकी कविताओं का संकलन देवनागरी और फ़ारसी भाषाओं में आज भी उपलब्ध है। उनके कृष्ण-भक्ति के गीत और दोहे आज भी लोंगों को मंत्र मुग्ध कर देते हैं।

"कृष्ण लीला" और "राधा स्वयम्बर" उनकी कुछ प्रसिद्ध कृति है जो स्वयं में ही कष्ण भक्ति का भंडार हैं। स्वामी परमानंद को कश्मीर के हिंदु और मुसलमान दोंनों पसंद करते थे और उनका आदर करते थे। जब परमानंदजी वृद्ध अवस्था में अकेले रह गये, जब सब उनके अपने इस संसार को छोड़कर चले गये थे, उस वृद्ध अवस्था में एक मुस्लिम परिवार "सालेह गनयी" ने अंत समय तक उनकी देखभाल की। परमानंदजी ने 90 साल की उम्र में (1879) अपनी देह त्याग दी।

सन् 1800 ई. का एक और नाम "लक्ष्मण जू बुलबुल नागामी" जिनका वास्तविक नाम "लक्ष्मण रैना" था तथा 'बुलबुल' उपनाम था। ये मूलतः श्रीनगर बानामुहल्ला के निवासी थे। इनके पिता का नाम पं. सुंदर राजदान था। हिंदी, उर्दू, संस्कृत, फ़ारसी भाषा के अलावा उन्हे वेदांत, त्रिक्दर्शनज्योतिष का भी गूढ़ ज्ञान

था। कम उम्र में ही माता-पिता के देहांत के बाद और भाईयों से अनबन होने के कारण ये घर छोड़कर भारत भ्रमण के लिए निकल पड़े और मथुरा, वृन्दावन,कलकत्ता, दिल्ली आदि स्थानों की यात्रा की। दो वर्ष पश्चात जब वे घर लौटे तो उन्हें खाद्य विभाग के मुख्य-कार्मिक के पद पर नौकरी मिल गई और उसी सिलसिले में उन्हें अक्सर नागाम (गाँव) जाना पड़ता था, यही से उन्होंने अपना विवाहित जीवन भी शुरु किया और नागामी कहे जाने लगे।

सपरिवार की अकस्मात् मृत्यु एवं अन्य दुर्घटनाओं से इनका मन उद्विग्न हो उठा और मन की शांति के लिए ये अपना समय साधुओं के सत्संग में बिताने लगे और नागाम छोड़कर प्रसिद्ध तीर्थ स्थान "मट्टन" चले गये। यहाँ पर कवि परमानंद की ज्ञान- गरिमा से प्रभावित होकर इन्होंने उनका शिष्यत्व ग्रहण कर लिया। परमानंद जी के अनुरोध पर ही उन्होंनें पुनः विवाह किया, सन्योगवश दूसरे विवाह से भी उन्हें दुखों का सामना करना पड़ा जिसके फलस्वरूप उन्हें गृहस्त-जीवन से विरक्ति हो गई। अब ये अपना सारा समय पढ़ने-लिखने और सत्संग में बिताने लगे। इनकी प्रमुख काव्य- रचनाओं में "सामनाम" एक संक्षिप्त काव्य-कृति है। "नल-दमन" खण्ड़काव्य है, जिसमें नल-दमयंती की कथा को आधार बनाया गया है। "चायनामा" में नूनचाय (नमकीन चाय) की प्रसंसा और उसके स्वाद पर तुकबंदियाँ है। "भजन-स्तुतियों" में कृष्ण के चरित्र का गान किया गया है। "राधा स्वयंवर" में राधा और कृष्ण की रूपमाधुरी के साथ उनके विवाह की कथा का वर्णन किया गया है। कुछ विद्वानों का मानना है कि कवि पमानंद के राधा स्वयंवर की पूर्ति इन्हीं के द्वारा हुई। सन् 1898 ई. में इनका निधन हो गया।

"कृष्णा जू राजदान" कृष्ण भक्ति के अद्भूत कवि,दक्षिण कश्मीर के अनंतनाग के निकट एक गाँव वनपोह में 20 नवम्बर 1850 ई. में जन्में जिन्होंने राधा कृष्ण के गहरे आलौकिक और आध्यात्मिक प्रेम को अपनी कविताओं और लेखों द्वारा बाखूबी दर्शाया है। इनके पिता श्री गणेश जू राजदान बहुत बड़े ज़मींदार थे, इस

वजह से श्रीकृष्ण राजदान का पालन पोषण बड़े ही लाड़ प्यार से हुआ। माता के अत्यंत धर्म परायण होने के काराण श्रीकृष्ण राजदान धार्मिक संस्कारों से भी ओत-प्रोत रहे। पिता की प्रबल इच्छा ने श्रीकृष्ण को साहित्य का प्रकाण्ड पंडित बनाया। कहते हैं इन्होंने बाल्यावस्था में ही वेदों, उपनिषदों तथा अन्य शास्त्रों का विधिवत् अनुशीलन कर लिया था। कश्मीर के प्रसिद्ध विद्वान् महामहोपाध्याय मुकुंदरम शास्त्री के शिष्यत्व में इन्होंने अपनी शिक्षा पूरी की। ये भी कहा जाता है कि अपने पुत्र का एकाकीपन दूर करने के लिए इनके पिता ने गाँव के अनेक बच्चों को शिक्षा की ओर प्रेरित कर, इन्होंने उनकी शिक्षा का भार भी स्वयं वहन किया। श्रीकृष्ण राजदान की काव्य-प्रेरणा के समबंध में अनेक किंवदंतियाँ हैं। कुछ लोंगों का मानना है कि इन्हें काव्य-रचना की प्रेरणा स्वप्न में शिवजी के दर्शन से मिली थी। इसी स्वप्न ने इनकी बौद्धिक प्रतिभा को उजागर किया और इस प्रकार नौ वर्ष की अल्प आयु में ही इनकी काव्य साधना प्रारम्भ हो गई। शुरुआती दौर में इन्होंने सामन्य भजन लिखे किंतु बाद में विधिवत् फारसी में काव्य-रचना करने लगे, क्योंकि उस समय कश्मीर में फारसी में लिखने का अधिक प्रचार था। इष्टदेव की कृपा से और अपनी योग्यता से गृहस्त जीवन के साथ-साथ इनकी काव्य प्रतिभा भी विकसित होती गई। इनकी प्रमुख रचनाओं में "कृष्ण लीला" "शिव-परिणय" अथवा" शिव-लग्न" "ड़ल-लीला" तथा "भोग-लीला" हैं। संस्कृत भाषा में रचित 'शिव-परिणय तथा शिव लग्न" एक ही कृति है। "कृष्ण-लीला काव्य" की रचना कश्मीरी भाषा में की थी जिसमें भगवानकृष्ण के जन्म, बालक्रीड़ा,लोरी, बाल-सुलभ चेष्टाएँ. गोपियों का विरह वर्णन आदि की अत्यंत भव्यपूर्ण अभिव्यक्ति मिलती हैं। रास लीला से सम्बंधित इनकी रचनाएँ आज भी कश्मीरी हिंदु-परिवारों में विवाह आदि संस्कारों तथा उत्सवों में गायी जाती हैं। उनके द्वारा लिखे गये कृष्णा भक्ति के गीत आज भी लोकप्रिय हैं। उनका गोलोकवास 75 साल की आयु में 1925 ई0 को हुआ।

"कृष्णा जू" के भतीजे "गोविंद कौल" जो उन्हीं के समकालीन रहे उनका जन्म भी वनपोह (अनंतनाग) में हुआ। "गोविंद कौल" ने भक्ति गीत संस्कृत, हिंदी

और फारसी भाषा के साथ-साथ कश्मीरी भाषा में भी लिखा। वो गोपाल बाल कृष्ण की भक्ति में इतने रम जाते थे कि फिर उन्हें संसार की सुध ही नहीं रहती थी| वो अपने आपको पूर्ण रूप से अपने “रसीले” को समर्पित कर देते थे। “गोविंद कौल” द्वारा रचित “मोनि-पादान” से हमें ये ज्ञात होता है कि वो बाल कृष्ण के पाँव चूमने के लिए अपना सर्वस्य अर्पण कर देना चाहते थे। उनको कृष्णा की बाँसुरी से “ओम” की ध्वनि सुनाई देती थी और वो कृष्ण के साथ किसी भी हाल में “रास” खेलना चाहते थे। गोविद कौल की कविता ”श्यामसुनदेराह” (कविता नम्बर 27 पेज 31) जो कि उनकी पुस्तक “गोविंतअमृत” में है,उनकी इस भक्ति का ह्में एहसास कराती है।

एक और अल्प चर्चित नाम ज़िंदा कौल जिनको मास्टरजी कहते थे,का जन्म 1884 में श्रीनगर के हब्बाकदल इलाके में हुआ। इन्होंने भी अपनी भक्ति पूर्ण कविताएँ हिंदी उर्दू कश्मीरी और फ़ारसी में लिखीं। वो बाबापूरा के एक विद्धालय में अध्यापक के रूप में कार्यरत थे इसिलिए मास्टर जी/मास्टर ज़िंदा कौल के नाम से विख्यात हुए। मास्टरजी पहले कश्मीरी थे जिन्हें कश्मीरी भाषा साहित्य के लिये 1956 में साहित्य एकाद्मी पुरुस्कार से सम्मानित किया गया और सम्मान के तौर पर उस समय उन्हें भारतीय साहित्य एकाद्मी की ओर से 5000/- रूपये दिये गये थे। मास्टर जी की कविताएँ लल देद और स्वामी परानंद जी से बहुत प्रेरित है। मास्टर जी ने भक्ति दर्शन के साथ-साथ शांती विषयों पर भी बहुत रचनाएँ लिखी है। भक्ति पूर्ण रचनाओं के लिए ये जाने जाते थे। इन सब के अतिरिक्त अचर्चित भक्ति भाव के कश्मीरी कवि और भक्त हुए उनमें विष्णुकौल, आनंद राम, नील कण्ठ, हरिहर कौल, मन जू, टीक्का काक, बोना काक और लछ्छी काक उल्लेखनीय हैं। मन जू कृष्ण भक्त थे और उनकी कृष्ण भक्ति की रचनाएँ मन मुग्ध कर देने वाली हैं।

पंडित टीक्का काक, पंडित बोना काक और पंडित लछ्छी काक ने कृष्ण भक्ति कविताओं के अतिरिक्त “वाखयों” की परम्परा को भी आगे बढ़ाया। कश्मीर को “ऋषिवर” यानि ऋषि- मुनियों और संतों की भूमि कहा गया है। भौगोलिक दृष्टि

से भारत का यह क्षेत्र भले ही अन्य क्षेत्रों से अपनी भिन्नता के कारण विशिष्ट है पर सांस्कृतिक दृष्टि से विशेष कर धार्मिक दृष्टि से इस भू भाग में भी अन्य क्षेत्रों की भांति शैव, वैष्णव परम्परा के चिंतकों के विचार व तत्सम्बंधित मान्यताओं का परिचय मिलता है। इस क्षेत्र की स्थापत्य कला में यहाँ के मंदिर विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। वैष्णव परम्परा के अंतर्गत श्रीकृष्ण भक्ति के साधकों की वाणी यहाँ की फ़िज़ाओं में कभी गूंजती रही है पर आश्चर्य की बात तो ये है कि इस घाटी में आज तक एक भी "श्रीकृष्ण" का या "राधा-कृष्ण" का मंदिर नहीं बना।

नसरीन अली 'निधि'

अध्यक्षा "वादीज़ हिंदी शिक्षा समिति" (श्रीनगर)

9419624129 ,7006692361

wadieshindi@gmail.com

लोंग्चांग आदिवासी उप-समुदाय के इतिहास और लोक-संस्कृति

रेमोन लोंग्कु

शोध सारंस :

भारत के अरुणाचल प्रदेश विभिन्न आदिवासी समुदाय एवं उप-समुदय के लिए प्रसिद्ध एक राज्य है । इस राज्य में छब्बीस आदिवासी समुदाय तथा सौ से अधिक उप-समुदाय निवास करते हैं। यहाँ की भाषा एवं संस्कृति में विविद्धता प्राप्त होती है। छब्बीस आदिवासी समुदाय में न्यीशी, अदी, गालो, तागिन, अपातानी, मिश्मी, नोक्टे, वान्चो और तांग्सा प्रमुख हैं। तांग्सा समुदाय के अंतर्गत तेईस उपसमुदाय हैं जैसे- लोंग्चांग, मुक्लोम, तिखाक, हावी, पोंथाई, मोसांग, मोरांग, किम्सिंग, रोंरंग, जुगली, लुन्गारी, सांके, लुन्फी, शांग्वल, शांग्री, ङाइमोंग, मुंगरे, लांचिंग, हाखुन, हाचेंग, चुलिम, जोंगी, थम्पांग इत्यादि। इनमें से लोंग्चांग की जनसँख्या सबसे अधिक के लिए पहचानी जाती है। अरुणाचल प्रदेश में प्रत्येक समुदाय की अपने-अपने पर्व-त्यौहार है जैसे न्यीशी के न्योकुम, गालो के मोपिन, नोक्टे के चालो-लोकू, वान्चो के ओड़िया, तांग्सा के मोह-मोल आदि।

लोंग्चांग उप-समुदाय की अपनी कोई लिपि नहीं है। वे युगों से वाचिक परंपरा के माध्यम से ही अपनी संस्कृति का रखाव-बचाव कर रहे हैं। यहाँ तक कि लोंग्चांग उप-समुदाय पर हिन्दी भाषा में कोई पुस्तकें या शोध आलेख उपलब्ध नहीं है। अंग्रेजी में कुछ पुस्तकों में लोक-संस्कृति पर चर्चा अवश्य हुई है किन्तु वे शेष हैं। ऐसे में इनके लोक-संस्कृति पर चर्चा करना अति आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण है।

बीज शब्द : आदिवासी, तांग्सा, प्रकृति, पुरखा, पारोंग, मोह, रंग्फ्राह, लोंग्चांग, लोक, हाअरोंग

मूल आलेख :

लोंग्चांग उप-समुदाय का परिचय और इतिहास- लोंग्चांग तांग्सा की प्रमुख उप-समुदाय में से एक है। वे तांग्सा के 'तांग्वा' विभाजन से संबंधित हैं। यह नाम दो

शब्दों से मिलकर बना है- तांग का अर्थ है पत्थर और 'चांग' का अर्थ है जन्म। इस प्रकार, यह नाम इंगित करता है कि 'जिनकी उत्पत्ति पत्थर से हुई हैं'। लोंग्चांग लोगों का मानना है कि वे बर्मा की हुकोंग घाटी से प्रवास होकर तिराप नदी के मार्ग का अनुसरण करते हुए वे चांगलांग पहुँचे। 'द तांग्सास ऑफ़ अरुणाचल प्रदेश' पुस्तक की लेखिका इंदिरा बरुआ ने भी बर्मा को लोंग्चांग लोगों की मूल मातृभूमि मानते हैं, लेकिन उनकी उत्पत्ति के सटीक स्थान के विषय में निश्चित रूप से नहीं बता सके। 2006 में राव ने तांग्सा समुदाय के बीच कार्य किया तथा स्थानीय नेताओं की सहायता से लोंग्चांग लोगों के प्रवास के विषय में एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचने की कोशिश की। अंततः यह निष्कर्ष निकाला गया कि लोंग्चांग मूल रूप से तांग्सांग लोंग्चांग नामक स्थान के थे, जो बर्मा की हुकोंग घाटी में मासोई सिनरापम नामक पर्वत श्रृंखला पर स्थित था।

इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है जहाँ प्रमुख जनजातियों के दृढ़ दबाव के कारण उन क्षेत्र के लोग पश्चिम में पटकाई पर्वतमाला की ओर चले गए। यह एक पुष्ट तथ्य है कि कुबलई खान द्वारा स्थापित शक्तिशाली साम्राज्य ने हुकोंग घाटी से बड़े पैमाने पर प्रवास के लिए मजबूर किया था। मंगोलिया, चीन और निचले बर्मा की कई योद्धा आदिवासियों के निरंतर छापे उस क्षेत्र से बड़े पैमाने पर प्रवास का एक और कारण था। इसका उल्लेख कुछ ग्रामीणों द्वारा किया गया है जो लोंग्चांग लोगों के बीच मौजूद मौखिक इतिहास से संकेत मिलता है। यह भी माना जाता है कि ठंडी और गीली जलवायु परिस्थितियों के कारण उन्होंने पश्चिम की ओर अपना प्रवास शुरू किया था। ऐतिहासिक साक्ष्यों से यह भी पता चला है कि अहोम सुकाफा(1228-1268 ई.) के नेतृत्व में उसी मार्ग का अनुसरण करने वाले ताई अहोम को तांग्सा समुदाय से भी लड़ना पड़ा था। यह लड़ाई हुकोंग घाटी में हुई थी। अहोम सुकाफा से युद्ध के बाद सुहेनफा(1488-1493 ई.) शासनकाल के दौरान अहोम और तांग्सा के बीच एक और युद्ध हुआ था। कुछ प्रारम्भिक हार के बाद, अहोम तांग्सा लोगों को हराने में सफल रहे। उस समय से तांग्सा लोगों ने अहोम के

साथ सीधे टकराव से परहेज़ करने लगे तथा वे सुरक्षित स्थान पर बस गए। तांग्सा लोगों ने जानबूझकर तिराप घाटी में पटकाई पहाड़ियों के उत्तरी ढलानों की ओर बढ़ना शुरू कर दिया था और ब्रह्मपुत्र घाटी की ओर जाने वाले उत्तर-पश्चिमी मार्ग से परहेज़ करने लगे। वे भिन्न-भिन्न जत्थों में ओखुतोहाप और पंगसा दर्रों से होते हुए तिराप घाटी में प्रवेश करने लगे। इंदिरा बरुआ ने लोंग्चांग उप-समुदाय के विषय में लिखा है- "The movements of the lungchaangs and the others Tangsas is slow compare to other tribes like the khamtis, the singphos and the kacharis. After settling different places, considering diverse factors, ultimately one batch of the lungchangs crossed over to the north Tirap River at a Ngasai and gradually reached the top of changlang changkan to settle down permanently. Thus the changlang village emerged as a strong political centre on the northern side of the Tirap valley. And the lungchangs, who settled first in the village, earend the tittle of 'kengnya'(early settlers). They considered changlang as favourable place to stay because the hill top settlement had given them an opportunity to keep a watch of the enemy. It also received sunlight in the morning, earlier than other villages. Slowly they got the opportunity of mixing with the local people living in the plains of Brahmaputra valley. From that original settlement, they started to move in different directions and established several new villages."[1] अर्थात खमती, सिंग्फो तथा कचारी जैसी अन्य आदिवासियों की तुलना में लोंग्चांग और अन्य तांग्सा उप-समुदाय की गति धीमी थी। विभिन्न स्थानों पर बसने के बाद, विभिन्न कारकों पर विचार करते हुए, अंततः लोंग्चांग का एक

समूह नागासाई में तिराप नदी के उत्तर को पार कर गया और धीरे-धीरे स्थाई रूप से बसने के लिए चांगलांग चांगकन शीर्ष पर पहुँच गए।

इस प्रकार, चांगलांग गाँव तिराप घाटी के उत्तरी किनारे पर एक मज़बूत राजनीतिक केंद्र के रूप में उभरा और लोंग्चांग जो सबसे पहले गाँव में बसे तथा 'केंग्या' अर्थात प्रारंभिक गाँव के निवासी की उपाधि प्राप्त की।

लोंग्चांग लोगों ने चांगलांग में रहने के लिए अनुकूल स्थान माना क्योंकि पहाड़ी की चोटी पर बसी बस्ती ने उन्हें शत्रुओं पर नज़र रखने का अवसर दिया था। धीरे-धीरे उन्हें ब्रह्मपुत्र घाटी के मैदानी इलाकों में रहने वाले स्थानीय लोगों के साथ घुलने-मिलने का अवसर मिला। वे उस मूल बस्ती से आगे बढ़ने लगे विभिन्न दिशाओं में और कई नए गाँव स्थापित किये।

लोंग्चांग उप-समुदाय का अपने मूल निवास स्थान से पलायन जारी रहा। यह भी उल्लेख किया गया है कि जांगसुंग-लोंग्चांग के आस-पास वापई-केंग नामक एक और लोंग्चांग लोगों का गाँव था। चांगलांग-चांगकान में बसने वाले लोंग्चांग लोगों के प्रथम दल के बाद, इस गाँव के लोंग्चांग भी तिराप घाटी में चले गए। इस प्रवास के पीछे भी वही कारक हो सकता है जो प्रतिकूल सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक स्थिति क़ानून तथा व्यवस्था को बिगाड़ती है या फिर शत्रुता ने लोगों को उस स्थान से पलायन करने के लिए मजबूर किया होगा। बसावट के नए क्षेत्र की खोज की प्रक्रिया में कई नए गाँव अस्तित्व में आए। रंगकतु तांग्सा समूहों का पहला गाँव था, जो कुछ तांग्सा लोग उस बस्ती को छोड़कर चले गए और विकास के क्रम में कई नए गाँव उभरे। रंग्कतु गाँव आज भी अस्तित्व में है।

तांग्सा के लोंग्चांग उप-जनजाति को कई बहिविर्वाही कुलों में विभाजित है। लोंग्चांग पहले लोहे के ओजारों, नमक और कपड़ों के व्यापार के दौरान असमिया, लुन्गारी, तुत्सा और मुकक्लोम के बीच मध्यस्थ के रूप में कार्य करते थे।

लोंग्चांग उप-समुदाय के लोक-संस्कृति

लोंग्चांग लोग अपने पारंपरिक आदिवासियत धर्म में विश्वास करते हैं। उनकी धार्मिक मान्यताओं का पता विभिन्न त्यौहारों, पैतृक पूजा, अनुष्ठान गतिविधियों आदि से आसानी से लगाया जा सकता है। वे दुष्ट आत्माओं और पुरखों में विश्वास करते हैं और विभिन्न अवसरों पर उन्हें प्रसन्न करने के लिए अनुष्ठान किए जाते हैं तथा यह उनके जीववादी आदिवासियत धर्म में उनके विश्वास को दर्शाता हैं। पुरखों को प्रसन्न करने के लिए वे विभिन्न जानवरों का दान करते हैं। पारिवारिक और सामुदायिक स्तर पर अधिकांश धार्मिक उत्सवों में सुअरों और मुर्गों का दान दिया जाता है।

पारिवारिक स्तर के अनुष्ठान

पारिवारिक स्तर के अनुष्ठान को वुनांगथत या वुकाकाक कहते हैं। यह अनुष्ठान घरेलू पूर्वज (हमताई) की पूजा करने के लिए पारिवारिक स्तर पर किया जाता है। हमताई का अर्थ है- घर के पूर्वज। यह बीमारियों, बुरी आत्माओं और परिवार के शत्रुओं से सुरक्षा के लिए किया जाता है। परिवार के मुखिया द्वारा मुर्गे का दान दिया जाता है और मुर्गे के पैर शगुन के रूप में काम करते हैं। पैरों को देखकर विशेषज्ञ परिवार के सदस्यों के भविष्य के बारे में अनुमान लगाते हैं। यह अनुष्ठान वर्ष में एक या दो बार परिवार के सभी सदस्यों की उपस्थिति में करते हैं।

नारोंग

नारोंग उत्सव लोंग्चांग लोगों द्वारा उस समय मनाया जाता है जब गीली धान की फसलें पक जाती हैं और झूम फसलें कटाई के लिए तैयार हो जाती हैं। इस त्यौहार का सामाजिक-आर्थिक महत्व है, क्योंकि इस अनुष्ठान को किए बिना किसी को भी फसल काटने के लिए जाने की अनुमति नहीं है। यह आमतौर पर नवंबर के अंतिम या दिसंबर महीने में किया जाता है । इस अनुष्ठान में फसलों की भावना के नाम पर एक सुअर या मुर्गे की बलि दी जाती है और प्रकृति को प्रसन्न करते हैं । उस दिन सभी ग्रामीण पुरुष, महिला और बच्चों की परवाह किए बिना उत्सव में भाग लेते हैं और भोज आयोजन किया जाता है । यह आमतौर पर धान के खेत की मुख्य

नहर के पास किया जाता है । यह अनुष्ठान अच्छे उत्पादन के लिए फसलों की भावना को प्रसन्न करने और निरंतर फसलों के लिए भी इसी उम्मीद से किया जाता है। उस विशेष दिन धान के भूसे के तीन बंडल लाए जाते हैं और उन्हें खेत में अनुष्ठान के लिए निर्धारित स्थान पर रखा जाता है। धान के गट्ठर पर जानवरों का खून छिड़का जाता है फिर बंडलों को घर में एक विशेष स्थान पर लाकर रख दिया जाता है। अगले फसल के ऋतु में इस बंडल से धान के बीजों को अगले ऋतु में बोए गए बीजों के साथ मिलाया जाता है। माना जाता है कि इससे फसलों की उत्पादकता बढ़ती है।

नओ-नागोत

यह संस्कार नवजात शिशु के कर्ण छेदन के समय किया जाता है। इस अवसर पर सुअर या मुर्गे की बलि दी जाती है। सुअर के यकृत या मुर्गे के पैरों की जाँच करके बच्चे के भविष्य के बारे में अनुमान लगाते हैं। इस उत्सव में गाँव के बुजुर्गों को विशेष रूप से आमंत्रित करते हैं।

मोह

मोह त्यौहार मई के महीने में मनाया जाता है। इसमें एक अनुष्ठान किया जाता है जिसे हिम रोम या हम-रोम के नाम से जाना जाता है। इस समारोह में परिवार के सभी सदस्यों की मौजूदगी ज़रूरी होती है। पिता या ज्येष्ठ पुत्र को प्रत्येक घरेलू वस्तु पर भोजन और चावल की मदिरा डालनी होती है। कुछ मंत्रों का जाप करके वे सभी वस्तुओं पर तीन बार चावल की मदिरा डालते हैं। यह अनुष्ठान व्यक्तिगत परिवार द्वारा किए जाते हैं, जिन्होंने हाल ही में किसी घटना का सामना किया हो। हाल के वर्षों में मरने वाले परिवार के किसी सदस्य की आत्मा को प्रसन्न करने के लिए मंगरेई या मंगित नामक एक अनुष्ठान किया जाता है। ऐसा माना जाता है कि इस अनुष्ठान के संपन्न होने तक दिवंगत आत्मा घर के भीतर ही रहती है। ऐसी दिवंगत आत्मा का मंडराना परेशानियाँ खड़ी कर सकती है इसलिए, यह अनुष्ठान मृत व्यक्ति के नाम पर एक मुर्गे का दान किया जाता है। इस अनुष्ठान को करने के पीछे का

वास्तविक कारण आत्मा को यह एहसास दिलाना है कि वह अब इस परिवार का सदस्य नहीं है और वे बलिम रंग अर्थात आत्माओं की दुनिया से है। वे परिवार के कल्याण और समृद्धि के लिए जिम्मेदार भावना को प्रसन्न करने के लिए मवेशियों की बलि देकर हिमताई नामक एक अनुष्ठान मनाते हैं। इस अनुष्ठान को करते समय, वे कुछ प्रकार के भोजन खाने और कुछ स्थानों पर जाने से परहेज करके कुछ वर्जनाओं का पालन करते हैं। उन्हें इन वर्जनाओं का तब तक पालन करना होता है, जब तक कि सुअर की बलि नहीं चढ़ाते।

नवविवाहित महिला के मामले में, पति के घर में बहू को दीक्षा देने की एक रस्म भी निभाई जाती है। आम तौर पर, दीक्षा संस्कार के रूप में एक सुअर की बलि चढ़ाई जाती है और इस अनुष्ठान को करने के बाद उसे अपने पति के परिवार का सदस्य माना जाता है। नए घर के निर्माण के मामले में हिमताई अर्थात पूर्वज को खुश करने के लिए सुअर दान किया जाता है। ऐसा माना जाता है कि घर मूल निवास स्थान होने पर पूर्वज नाराज़ हो सकते हैं, इसलिए उसे खुश रखना चाहिए। जब कोई परिवार नया नोंग अर्थात ढोल बनाता है तो गाँव वालों को बुलाकर भोज का आयोजन किया जाता है। यह एक प्रकार से ढोल को स्वागत करने का प्रतीक होता है। किसी समुदाय का अस्तित्व हमेशा कृषि पद्धतियों पर निर्भर करता है। दूसरी ओर, कृषि पद्धतियाँ प्रकृति पर निर्भर करती हैं। यह एक सार्वभौमिक प्रथा है कि प्रत्येक समुदाय या जनजाति कुछ निश्चित धार्मिक कार्य करते हैं। लोंग्चांग लोग साल में मुख्य रूप से दो त्यौहार मनाते हैं। इन त्यौहारों का एक विशेष धार्मिक महत्व है और ये विशेष रूप से अपने-अपने तरीके से मनाए जाते हैं। ये दोनों त्यौहार पारिवारिक स्तर के साथ-साथ सामुदायिक स्तर पर भी मनाये जाते हैं।

मोह त्यौहार में लोंग्चांग द्वारा अधिकतम तीन से पाँच दिनों की अवधि के लिए मनाया जाता है, हालांकि मुख्य उत्सव तीन दिनों तक जारी रहता है। मोह त्यौहारों में कुछ सदस्यों की भूमिका महत्वपूर्ण मानी जाती है। सबसे पहले लमशिवा (नृत्य का नेता, यानी नृत्य करते समय नर्तकियों का नेतृत्व करने का अधिकार

व्यक्ति) की भूमिका महत्वपूर्ण होते हैं। उन्हें एक विशेष कबीले से चुना जाता है और उत्सव में उनकी भागीदारी की उपयुक्तता के आधार पर उनका नेतृत्व जारी रखा जाता है। फिर नोंग-रोम-तांग (ढोल की पूजा करने वालों का घर) एक विशेष परिवार घर का चयन किया जाता है, जिन्हें उस वर्ष के लिए ढोल रखने के लिए विशेष रूप से समर्पित एक अनुष्ठान करना होता है। नोंगबट (एक अन्य पारिवारिक अनुष्ठान) में नृत्य के अंतिम दिन ढोल को रोक दिया जाता है। समापन समारोह के बाद मालिक को नोंग को सुरक्षा में रखना होता है। कुछ नियमों का पालन किए बिना ढोल को घर से बाहर ले जाना वर्जित माना जाता है। मोह त्यौहार के दो दिन पहले ही उन्हें इसे ले जाने की अनुमति होती है। इन व्यक्तित्वों, यानी लम्शिवा, नोंग-रोम-तांग और नोंगबट-तांग द्वारा निभाई गई भूमिकाएँ महत्वपूर्ण होती हैं और जैसा कि यह उल्लेख किया गया है कि उनकी साझेदारी मोह उत्सव के प्रदर्शन की उपयुक्तता के आधार पर जारी होती हैं। यदि फसल की पैदावार खराब मात्रा/गुणवत्ता वाली हो या कोई अनहोनी हो जाए तो माना जाता है कि इसके लिए ये तीन वे व्यक्ति जिम्मेदार हो सकते हैं। इससे उबरने के लिए वे अगले वर्ष के लिए सदस्यों को बदलने की परंपरा रखते हैं। इसके विपरीत, अगर उन्हें अच्छी फसल मिलती है तो साझेदारी लगातार वर्षों तक जारी रहेगी। ढोल, समूहों के लिए मुख्य संगीत वाद्ययंत्र होने के नाते, प्रत्येक लोगो को नृत्य करना पड़ता है। गाँव में घर-परिवार इस उत्सव की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है। मोह उत्सव तीन दिनों तक चलता है। पहले दिन को न्याप्सिक सा के नाम से जाना जाता है, दूसरे और तीसरे दिन को क्रमशः रोम-रोम-सा और मोहचिम साह के नाम से जाना जाता है। अंतिम दिन को नोंगबुर सा के रूप में जाना जाता है, न्याप्सिक सा से पहले के दिन को नोंगकिंग सा के रूप में जाना जाता है।

पारोंग/हारोंग

पारोंग या हारोंग त्यौहार जून के महीने में दो दिनों तक मनाया जाता है। त्यौहार की शुरुआत एक अनुष्ठान से होती है जो गांव के मुख्य द्वार पर किया

जाता है। इस त्यौहार में 'लुंगवांग' गाँव का मुखिया की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण होती है। लुंगवांग द्वारा एक सुअर और एक मुर्गे की बलि चढ़ाई जाती है। भूमि पुरखा जिसे वे हा-ताई कहते हैं, उसे प्रसन्न करने के लिए यह आयोजन किया जाता है। भविष्य के बारे में जानने के लिए सुअर के यकृत और मुर्गे के पैरों की जाँच की जाती है। पहले दिन, युवाएँ सुबह-सुबह पेड़ों की कुछ शाखाएँ इकट्ठा करने के लिए जंगल में जाते हैं। शाखाओं को एक तरफ से और ऊपर से नीचे तक छाल हटाकर एक आकृति बनाया जाता है। आड़ा-तिरछा चिन्ह में रूपरेखा तैयार किये जाते हैं। फिर इन शाखाओं को गांव के दोनों ओर गांव के मुख्य द्वार पर लगा दिया जाता है। अनुष्ठान के लिए आवश्यक जानवरों को मौके पर लाया जाता है। लुंगवांग के साथ कुछ बुजुर्ग व्यक्ति पूजा से संबंधित आहार को रखने के लिए बांस का एक छोटा सा मंच बनाते हैं। जब व्यवस्था पूरी हो जाती है, तो लुंगवांग द्वारा एक सुअर और एक मुर्गे की बलि चढ़ाई जाती है। इसका कुछ हिस्सा जैसे मुर्गे के पंख, पैर, सिर और सुअर की पूंछ को बांस के मंच पर चढ़ाया जाता है, फिर वे हा-ताई को प्रसन्न करने के लिये पशु-पक्षियों का दान किया जाता है। युवा सामुदायिक भोज की व्यवस्था करते हैं। चावल की मदिरा जो महिलाओं द्वारा तैयार किया जाता है, उसे मौके पर लाया जाता है। चावल और मांस युवाओं और पुरुष सदस्यों द्वारा तैयार किया जाता है। जब व्यवस्था पूरी हो जाती है, तो सभी ग्रामीण और मेहमान मौके पर इकट्ठा हो जाते हैं। सदस्यों के लिए आहार परोसने से पहले, भोजन और मांस लुंगवांग द्वारा मंच पर चढ़ाया जाता है। सामुदायिक भोज के बाद, युवा और बुज़ुर्ग घर-घर जाते हैं और नृत्य करते हैं। पारोंग या हारोंग उत्सव का नृत्य बहुत सरल है। पुरुष और महिला दोनों नर्तक, मुख्य रूप से पुरुष सदस्य, एक-दूसरे का हाथ पकड़कर एक घेरा बनाते हैं| वे अपने हाथों को आगे और पीछे एक साथ हिलाते हैं और घर के फर्श पर पैर थपथपाते हैं। वे सभी एक साथ, लेकिन धीमी गति से कदम रखते हुए झूमते हैं। गीत को एक लय बनाए रखते हुए गाया जाता है, यानी गाने से परिचित एक व्यक्ति इसे शुरू करता है, जिसके पीछे-पीछे अन्य लोग भी

अनुसरण करते हैं और नृत्य करते है। इस प्रकार, समूह घर-घर जाकर नृत्य करता है, जहाँ उन्हें प्रत्येक घर में चावल की मदिरा और भोजन उपलब्ध कराया जाता है। गाँव के हर घर में जाने का कोई सख्त नियम नहीं है, लेकिन नर्तक जहाँ तक संभव हो, हर घर में घूमने की कोशिश करते हैं। दूसरे दिन कोई विशेष उत्सव नहीं होता। उस दिन ग्रामीणों को खेत और जंगल जाना वर्जित माना जाता है।

रंग्फ्राह पुरखा

वर्तमान में लोंग्चांग तांगसा एक पौराणिक आस्था में विश्वास करते हैं और इसे रंग्फ्राह फेथ प्रमोशन सोसाइटी के तहत 'रंगफ्रिज्म' नामक अपने धर्म के रूप में अपनाया है, जो पहले से ही संगठित और पंजीकृत है। तांग्सा जनजाति के एक पौराणिक कथा में उल्लेख मिलता है कि एक समय पृथ्वी पर भीषण प्रलय से यह मानव जगत नष्ट हो गया था। उन प्राकृतिक आपदाओं के कारण पृथ्वी से सभी मनुष्य नष्ट हो गये। केवल दो अनाथ जो भाई-बहन थे, ख़तरा टल जाने तक खुद को ज़मीन के नीचे छिपाए रखे, चूंकि उन्हें रंग्फ्राह द्वारा पहले ही घटनाओं के बारे में अवगत करा दिया गया था, इसलिए वे उस आपदा से खुद को बचा सके। जैसे-जैसे समय बीतता गया, मानव जातियाँ फिर से बढ़ने लगीं। लोंग्चांग सहित अन्य तांगसा लोग भी खुद को उन्हीं का वंशज होने का दावा करते हैं, जो पुरखा रंग्फ्राह की कृपा से जीवित बचे। प्रत्येक लोंग्चांग गांव में एक रंग्फ्राह का रंग्सुम हम अर्थात पवित्र स्थान है। ग्रामीण हर रविवार को उस स्थान पर जाते हैं और रंग्फ्राह पुरखा से प्रार्थना करते हैं। रंग्फ्राह अरुणाचल प्रदेश के तांग्सा और तुत्सा समुदाय के पारंपरिक आदिम पुरखा हैं। उनकी पूजा की जाती है और माना जाता है कि वे इस दुनिया के निर्माता, संहारक और रक्षक है।

निष्कर्ष

इस प्रकार लोंग्चांग उप-समुदय ने अपने इतिहास में कई संघर्ष एवं चुनौतियाँ देखे हैं। लोंग्चांग लोक-संस्कृति वर्तमान तक अस्तित्व में है किन्तु कुछ ऐसे गाँव भी है, जहाँ धर्म परिवर्तन के कारण उनकी यह आदिम संस्कृति समाप्त हो रही है। आज

भूमंडलीकरण और बाजारवाद का प्रभाव लोंग्चांग समाज में बड़ी दृढ़ता से फ़ैल रहा है जिससे उनकी लोक-संस्कृति पर खतरा मंडरा रही है। अपने अस्तित्व तथा अस्मिता को बचाने के लिए लोंग्चांग उप-समुदाय लगातार नए-नए संस्थानों को खोलने में जुटे हुए हैं जिससे उनकी लोक-संस्कृति संरक्षित रहें।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.Barua. Indira and D. Das, Deepanjana, *The Tangsa's of Arunachal Pradesh*, Concept Publishing Company pvt. Ltd, New Delhi, 2021 year. p-21

2.Dhaar. Bibhash, Coomar, Palash Chandra, *Tribes of Arunachal Pradesh*, Abhijit publications, New Delhi, 2016 year.

3.Dutta. Parul, *The Tangsa's*, G.M. Printers and Publishers Ganga Market Itanager, Arunachal Pradesh, 2010 year.

4.GRIERSON, G.A, *LINGUISTIC SURVEY OF INDIA - VOLUMN II'*, Calcutta Superintendent government printing India, West Bengal, 1919 year.

5.Elwin. Verrier, *Myths of North-East Frontier of India*, Gyan Publishing House , New Delhi, 2017 year.

नाम: रेमोन लोंग्कु

समुदाय: तांग्सा आदिवासी

जन्म भूमि: कुठुंग गाँव, चांगलांग जिला, अरुणाचल प्रदेश

संप्रति: पीएच.डी शोधार्थी, हिंदी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलोंग, मेघालय, 793022

संपर्क सूत्र: 9366268033, 9774791077, remonlongku1@gmail.com

त्रिलोकी बाबू का कोट

डॉ. शिबन कृष्ण रैणा

बात तब की है जब कश्मीर में आतंकवादी घटनाएं अपने चरम पर थीं। 1989-90 का वर्ष खासतौर पर इसलिए याद किया जाएगा क्योंकि इस साल रोज़-रोज़ के बम-धमाकों, अत्याचारों, आतंकी घटनाओं,हत्याओं आदि से तंग आकर बड़ी संख्या में कश्मीरी पंडित घाटी से विस्थापित होकर देश के दूसरे हिस्सों में चले आए। चले क्या आये, जिहादियों द्वारा बर्बरतापूर्वक खदेड़े गए। कुछ तो अपना घर-गृहस्थी का सामान साथ ले आने में सफल रहे, मगर कुछ को वहां सब कुछ छोड़ कर खाली हाथ ही अपनी जान बचाते हुए घरों से भाग जाना पड़ा।

अधिकतर विस्थापित कश्मीरी पंडित जम्मू और देश के दूसरे शहरों में चले आए और यहां विभिन्न कैंपों, मंदिरों, शरण स्थलों में रहने लगे। देश के कई सामाजिक संगठनों और संस्थाओं ने विपदा की इस घड़ी में विस्थापित कश्मीरी पंडितों की हर तरह से यथोचित मदद और सेवा की। मगर यह दर्द/गिला सभी को है कि जम्मू-कश्मीर सरकार ने घाटी से कश्मीरी पंडितों के इस पलायन पर आज तक चुप्पी साध रखी है और उनको वापस घाटी में बसाने की कोई कार्य-योजना अभी तक अम्ल में नहीं आई है। पूरी घाटी में कश्मीरी पंडितों के खाली पड़े मकान इस बात के गवाह हैं कि उनमें रहने वाले लोगों पर आतंकवादियों या उनके नाम पर कश्मीर के ही लोगों ने कितने ज़ुल्म ढाए होंगे!

चूंकि अधिकतर कश्मीरी-पंडित(हिन्दू) घाटी से पलायन कर चुके हैं, इसलिए आज उनमें बिखराव के कारण उनकी वोट की ताकत भी किसी मतलब की नहीं रही। जब वोट की ताकत ही नहीं बची, तो उनकी सुध लेने वाला भी कोई नहीं है। यों तो वहां ऐसा भी एक वर्ग मौजूद है, जो घाटी से पंडितों के पलायन पर बहुत दुखी है और कहता है कि यह पलायन कश्मीरी मुसलमानों के लिए बहुत बड़ा कलंक है।

विस्थापन की इस भगदड़ में मेरे मित्र त्रिलोकी बाबू का एक सूट, दर्जी अली मुहम्मद के पास श्रीनगर में ही रह गया था। यह सूट त्रिलोकी ने अपनी शादी

की तीसवीं सालगिरह पर पहनने के लिए अली मुहम्मद दर्ज़ी को सिलने के लिए दिया था। मगर किसको पता था कि एक दिन आतंक का कहर पंडितों को बेघर कर देगा? त्रिलोकी बाल-बच्चों समेत रातों-रात एक ट्रक में अपना सामान भर कर जम्मू चले आए।

सात-आठ वर्ष बाद जब स्थिति तनिक सामान्य हुई तो मुझे किसी काम से श्रीनगर जाना पड़ा। त्रिलोकी को जब मालूम पड़ा कि मैं श्रीनगर जाने वाला हूं तो उन्होंने मुझे एक काम पकड़ा दिया: दर्जी की पर्ची हाथ में थमा कर कहने लगे- 'भई, मेरा सूट वहां दर्जी के पास पड़ा हुआ है, उसने सिल तो दिया होगा, ये रहे सिलाई के पैसे और यह रही पर्ची।' दर्जी और दर्जी की दुकान से मैं अच्छी तरह वाकिफ था। मैंने पैसे और पर्ची जेब में डाल दिए।

श्रीनगर पहुंच कर अली मुहम्मद दर्जी की दुकान ढूंढ़ने में मुझे ज़्यादा दिक्कत नहीं हुई। हां, इतना ज़रूर पाया कि आसपास की दुकानें कुछ बदल और कुछ चौड़ी हो गई थीं। सड़कों पर आवाजाही और रौनक वैसी की वैसी थी। हां, दुपहियों की जगह चार पहिए वाली गाड़ियां कुछ ज़्यादा नज़र आ रही थीं। मुझे सचमुच बहुत अच्छा लग रहा था। इतने वर्षों बाद अपने मुहल्ले को देख कर, गली-कूचों, सड़कों, खाली पड़े मकानों आदि को देख कर मेरे मन में एक अजीब तरह का भाव भर आया।

मैं अली भाई की दुकान पर पहुंचा। सामने बैठे एक बुजुर्गवार के हाथ में त्रिलोकी की पर्ची थमा दी। वह शख्स मुझे कुछ क्षण तक एकटक निहारता रहा, फिर मेरे कंधे पर अपना एक हाथ रख कर बोला- 'अच्छा तो आप त्रिलोकीनाथ जी के दोस्त हैं? उन्होंने आपको अपना सूट मंगाने के लिए भेजा है...?' फिर दूसरा हाथ भी मेरे कंधे पर रखते हुए भावपूर्ण शब्दों में कहने लगे- 'वो! वोह देखो! उनका कोट ऊपर हैंगर में टंगा है, बिल्कुल तैयार है।' अपने एक सहायक से सूट को पैक करने के लिए कहते हुए उन्होंने मुझसे पूछा- 'कैसे हैं त्रिलोकीनाथ जी? बच्चे उनके कैसे हैं? अब तो बड़े हो गए होंगे, भाभी जी कैसी हैं?... भई, सचमुच बहुत बुरा हुआ, हमें भी बहुत दुख है... जाने कश्मीर को किसकी नज़र लग गई!'

इससे पहले कि वे कुछ और कहते, मैंने जेब से सिलाई के पैसे निकाले और दर्जी को पकड़ाने लगा। मेरे हाथ में पैसे देख कर अली मुहम्मद बोले- 'पहले

तो त्रिलोकीनाथ जी को हमारा आदाब कहना, फिर उनको कहना कि इंशा अल्लाह जब वे खुद यहां आएंगे, यहां रहने लगेंगे, तब मैं ये पैसे लूंगा, अभी नहीं, अभी बिल्कुल नहीं।.... आप बैठिए, चाय वगैरह लीजिए।' मैं कुछ भी बोल नहीं पाया। बस, सोचता रहा कि सदियों से चली आ रही कश्मीर की भाईचारे की इस रिवायत को यह किसकी नज़र लग गई!

⁕ डॉ. शिबन कृष्ण रैणा

पूर्व-अध्येता भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान,राष्ट्रपति-निवास,शिमला

मुलाक़ात डॉ. उपेन्द्र नाथ रैणा के साथ

डॉ. उपेन्द्र नाथ रैणा, वरिष्ठ कवि-साहित्यकार, नाट्यकर्मी और मीडिया कर्मी से डॉ. किशोर सिन्हा, सुपरिचित कवि-समीक्षक और मीडिया कर्मी की बातचीत।

डॉ. उपेन्द्र नाथ रैणा

जन्म : 2 अप्रैल, 1953, श्रीनगर, कश्मीर (विस्थापन के कारण वर्तमान में अब दिल्ली में निवास)

शिक्षा : विज्ञान में स्नातक, एम० ए० (हिन्दी) (कश्मीर विश्वविद्यालय)

पीएच० डी० विषय : साठोत्तरी हिन्दी तथा कश्मीरी कविता में आधुनिक संवेदना

प्रकाशन :

१) चीख़ भी एक भाषा है (कविता संग्रह-1980)

२) आत्मदाह (कविता संग्रह-1991) (माननीय राष्ट्रपति द्वारा पुरस्कार से सम्मानित)

३) "उपेन्द्र नाथ रैणा-बहुआयामी सर्जक व्यक्तित्व", सम्पादक : डॉ. किशोर सिन्हा

४) वितस्ता के नये चरण (कश्मीर के जाने-माने हिन्दी कवियों के संग्रह में कविताएँ प्रकाशित)

५) "ऋचायें नीलकंठी" (हिन्दी और कश्मीरी भाषा के वरिष्ठ कवि पण्डित मोहन निराश की प्रतिनिधि कविताओं का काव्य-संग्रह) सम्पादक : डॉ. उपेन्द्र नाथ रैणा

६) कश्मीरी भाषा में 18 वर्ष की आयु से कहानी, कविताएँ, नाटक, वार्ताएँ इत्यादि का लेखन, जिनका प्रसारण आकाशवाणी श्रीनगर, कश्मीर से होता रहा।

सम्प्रति: सन् 2013 में आकाशवाणी महा निदेशालय (प्रसार भारती) से वरिष्ठ कार्यक्रम अधिकारी पद से सेवानिवृत्त होने के पश्चात स्वतंत्र लेखन।

सम्पर्क-सूत्र: डॉ. उपेन्द्र नाथ रैणा, ए-41, इन्दिरा एन्क्लेव, नेब सराय, नई दिल्ली-110068, मोबाइल: 9999038459

ई-मेल : raina_upendra@yahoo.co.in / nath.uraina@gmail.com

किशोर सिन्हा : डॉ. उपेन्द्र नाथ रैणा वैसे तो आपका नाम किसी परिचय का मोहताज नहीं है। डॉ. रैणा कश्मीर से आते हैं जिसके बारे में कहा गया है कि धरती पर स्वर्ग अगर कहीं है तो यहीं है, यहीं है, यहीं है.... यानी रैणा साहब 'जन्नत-ए-कश्मीर' से आते हैं; लेकिन आकाशवाणी में एक अधिकारी के तौर पर उन्होंने बड़ी लम्बी सेवा दी है, ढेर सारे काम किए हैं, बहुत सारे नायाब प्रोडक्शन किए हैं। आप उस कश्मीर से आते हैं, जहां संस्कृत और हिन्दी के प्रकांड पंडित-विद्वान हुए हैं। आपके पिता पंडित मोहन निराश जी स्वयं हिन्दी और कश्मीरी के बहुत बड़े ज्ञाता, साहित्यकार, अनुवादक और कवि रहे हैं। तो एक समृद्ध विरासत आपके हिस्से में आई है। इस विरासत को आप किस प्रकार देखते हैं...

उत्तर- आपने तो बता ही दिया है कि मैं मूलतः कश्मीर से हूं, इसे देखते हुए मैं अपनी बात को दो भागों में रखना चाहूंगा। एक तो यह कि 30 वर्ष की आयु तक मैं कश्मीर में था। उसके बाद दिल्ली चला आया नौकरी के लिए। ज़ाहिर है कि मेरी शिक्षा-दीक्षा, पढ़ाई-लिखाई सब कश्मीर में हुई। मेरा जन्म एक मिडिल क्लास फ़ैमिली में हुआ। लेकिन मेरे लिए सबसे अच्छी और सौभाग्य की बात यह थी कि मेरे दादाजी संस्कृत के प्रकांड विद्वान थे। वे वहां पाठशाला चलाते थे और बच्चों को संस्कृत पढ़ाते थे। मेरे पिताजी, जैसा कि आपने बताया ही हिन्दी और कश्मीरी भाषा के बहुत बड़े साहित्यकार, चिंतक, विचारक रहे हैं। तो जिस परिवार में शुरू से ऐसा वातावरण रहा हो, चारों तरफ़ साहित्य, कविताएँ और प्रसारण की बातें हों, तो स्वाभाविक है कि उस वातावरण में जब मेरा पालन-पोषण हुआ तो मुझमें भी ये सब प्रवृत्तियां आ ही गईं। शुरू से ही मेरा झुकाव, मेरी प्रवृत्ति इस ओर रही है। बाद में आगे जब मेरी पढ़ाई होती रही घर में कविता का माहौल था, तो मैं भी छिटपुट रूप में कविताएं करने लगा। इसी प्रकार रंगमंच का वातावरण बना हुआ था तो रंगमंच की तरफ़ भी मेरी रुचि बढ़ने लगी। जब मैं मैट्रिक से ग्रेज़ुएशन तक आ गया तब तक परिपक्वता आ ही गई थी कि मुझे वास्तव में अब क्या करना है।

प्रश्न- रैणा जी, आपकी पूरी शिक्षा-दीक्षा कश्मीर में हुई और आकाशवाणी में जब आपका पदार्पण हुआ तो संभवतः आप दिल्ली आ चुके थे।

उत्तर- ग्रेजुएशन मैंने विज्ञान में किया है। फिर जैसा कि हर कोई नौकरी की तलाश में रहता है, पिताजी ने मुझे प्रोत्साहित किया कि जबतक नौकरी मिलती है, तबतक

क्यों न हिन्दी में भी ग्रेजुएशन किया जाए, क्योंकि शुरू से ही कविता और साहित्य में अभिरुचि थी। हालांकि छुटपुट तौर पर मैंने कुछ स्कूलों में पढ़ाने का काम भी किया है। श्रीनगर में दूरदर्शन केन्द्र पर मैंने कुछ दिन बतौर असिस्टेंट प्रोड्यूसर भी काम किया। लेकिन नौकरी के लिहाज़ से बात कुछ बनी नहीं। तबतक मैंने हिन्दी में ग्रेजुएशन कर लिया। तब पिताजी का ये मशविरा था कि जबतक कोई अच्छी नौकरी नहीं मिलती, मुझे पोस्ट-ग्रेजुएशन कर लेना चाहिए; क्योंकि अच्छी नौकरी के लिए ऊंची डिग्री का होना भी आवश्यक है। इससे यूनिवर्सिटी के वातावरण को भी देख पायेंगे और दो साल के बाद वहां पढ़ाने के भी क़ाबिल हो जायेंगे। दो साल में पोस्ट-ग्रेजुएशन मैंने कर लिया। उस समय एग्रीगेट में जो अंक मिले उसके अनुसार पिछले आठ-दस सालों में हिन्दी विभाग के किसी छात्र को उतने अंक नहीं आये थे। फिर पता चला कि हमें इसीलिए ‘सर्टिफ़िकेट ऑफ़ मेरिट’ दिया जा रहा है। तो पिछले आठ-दस सालों का रिकॉर्ड बीट करते हुए पोस्ट-ग्रेजुएशन भी पूरा हो गया तो मुझे कश्मीर यूनिवर्सिटी से कहा गया कि आप यहां पर पढ़ाना शुरू कीजिए; क्योंकि उनकी एक योजना रहती थी कि जो सबसे अधिक अंक पोस्ट-ग्रेजुएशन में लाता है और अगर विभाग में कोई पोस्ट ख़ाली है तो उस पोस्ट की सैलरी के बराबर वेतन पर वहां पढ़ाया जा सकता है। इस आधार पर मुझे भी वहां पढ़ाने के लिए कहा गया। पिताजी ने तब हमेशा की तरह प्रोत्साहित करते हुए कहा कि ये अब तुम पीएच.डी. भी कर लो। इस बात को मानते हुए मैंने वहां पढ़ाना भी शुरू कर दिया। साथ ही मुझे यू.जी.सी. की तरफ़ से स्कॉलरशिप भी मिल गई इस आधार पर कि मुझे वहां फ़र्स्ट क्लास फ़र्स्ट मिला था। ये सब करते-करते मैंने प्री-पी-एच.डी., जिसे ‘डिसर्टेशन’ भी कहते हैं-कर लिया। उन दिनों ‘एम. फ़िल’ नहीं हुआ करता था, हालांकि बाद में आ गया। उसके बाद डॉक्ट्रेट के लिए मेरा रजिस्ट्रेशन हो गया जिसका विषय था ‘साठोत्तरी हिन्दी तथा कश्मीरी कविता में आधुनिक संवेदना’। इसके बीच में ही आकाशवाणी में यहां पोस्ट निकली थीं तो मैंने अप्लाई कर दिया था और हमारा सेलेक्शन हो गया। हालांकि पिताजी इस पक्ष में थे कि शिक्षा के क्षेत्र में मुझे साहित्य-साधना के लिए, पढ़ाई-लिखाई के लिए पर्याप्त समय मिलेगा। उनको अपना ख़ुद का अनुभव था कि ज्योंही हम आकाशवाणी में आयेंगे, तो न दिन, न रात, कुछ भी नहीं रहेगा; तो फिर हम उस गति से लेखन-पठन का काम जारी नहीं

रख पायेंगे, लेकिन हमने थोड़ी-सी यही शर्त रखी गई कि अगर हमारा सिलेक्शन हो गया और कश्मीर से बाहर मेरी पोस्टिंग हो गई, ख़ास करके दिल्ली में, तो हम जाना चाहेंगे। रेडियो के लिए मेरा सिलेक्शन हो गया कार्यक्रम अधिशासी पद पर।

प्रश्न- रैणा जी, आपने यह तय कर लिया था कि अगर दिल्ली पोस्टिंग हो तो दिल्ली शिफ्ट होना चाहेंगे, और दिल्ली पोस्टिंग हो गई इसलिए आपने उसे ख़ुशी-ख़ुशी स्वीकार किया। आकाशवाणी में आप की शुरुआत और क्या-क्या अनुभव आपके हुए, क्योंकि आप विज्ञान के छात्र रहे, स्नातक विज्ञान में किया, लेकिन उसके बाद एम.ए. और फिर पीएच.डी. साहित्य में किया। कितना मुश्किल रहा आपके लिए। ख़ास तौर से ये जानना चाहता हूं कि जिस साठोत्तरी हिंदी कविता और कश्मीरी कविता का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया, तो साठोत्तरी कविता का बहुत लंबा कालखंड हो जाता है। आमतौर से हिंदी कविता का क्षेत्र हमारे लिए जाना-पहचाना है, सब कुछ है; लेकिन कश्मीरी कविता का जो मर्म है, उस कविता की जो संवेदना है, वह बहुत कम पहुंच पाती है हिंदी-भाषी क्षेत्रों में। तो दोनों की संवेदना में क्या एकरूपता है या कितना अंतर है?

उत्तर- मुझे पीएच.डी. के लिए क्या विषय लेना चाहिए इस पर बहुत विचार-विमर्श हुआ। जो मेरे हेड ऑफ डिपार्टमेंट थे डॉ. रमेश कुमार शर्मा जी, वह खुद संस्कृत और हिंदी के विद्वान थे, उनके साथ बहुत विचार-विमर्श हुआ, क्या विषय लेना चाहिए। इसपर पिताजी का कहना था कि चूंकि कविता में भी रुचि रखते रहे हैं, तो क्यों न ऐसा विषय लें जिस पर अभी तक काम नहीं हुआ है; और दूसरा कवि होने के नाते आगे का रास्ता थोड़ा सहज और आसान रहेगा; जबकि यह रास्ता आसान नहीं रहा, कई कारणों से। साठोत्तरी हिंदी कविता जो उस समय थी, यह मेरी पीएच.डी '81 से शुरू हुई। उस वक्त तक हिंदी कविता पूरी तरह परिपक्व हो चुकी थी जिसे हम नई कविता के नाम से जानते हैं और आपको पता है कि 'तार सप्तक' श्रंखला के बाद इसमें एक नई गति आ गई थी। नई विचारधारा का इस नई कविता को नया स्वरूप देने की दिशा में बहुत ज़बरदस्त योगदान रहा, और जिसको ख़ासतौर से एक कालखंड में, 60' के बाद की कविता से उसको जाना-पहचाना गया। लेकिन उसकी अपेक्षा कश्मीरी कविता का उस समय उस लिहाज़ से उतना

विस्तार नहीं हुआ था। कश्मीर में जो हिंदी कविता उन दिनों लिखी जाती थी- मैं तब की बात बता रहा हूं 1981 के पहले की; तब तक कश्मीर में हिंदी कविता लिखने वालों का जो समूह बना हुआ था वह बहुत ही परिपक्व था, जिसमें बहुत सारे नामों में से कुछ ले सकता हूं- डॉ. शशि शेखर तोषखानी, पंडित मोहन निराश, डॉ. रतन लाल शांत इत्यादि हिंदी कविता के बहुत सशक्त हस्ताक्षर माने जाते थे। जो हिन्दी कविता में जाने-माने कवि के रूप में स्थापित चुके थे। एक पीढ़ी थी उस समय ऐसे कवियों की। इनका एक समूह था और उसका दूसरा कारण था कि हिंदी कविता जो कश्मीर में लिखी जाती थी, पूरे भारतवर्ष में जो हिंदी कविता थी वह उसके समानान्तर जा रही थी। क्योंकि हिंदी साहित्य वहां भी प्रचुर मात्रा में आता था, उसका पठन-पाठन भी हो रहा था, उसका अध्ययन भी हो रहा था और हिन्दी कविता के पाठक बहुत सचेत थे कि हिंदी जगत् में जो आज की नई कविता है, विशेषकर '60 के बाद की कविता, वो किस दिशा में जा रही है, उसके लिए कौन-सा प्लेटफ़ार्म तैयार हो गया है। लेकिन कश्मीरी कविता में उस तरह से, उतनी परिपक्वता जो उस दृष्टि से देखी जाती, वह नहीं आई थी; शुरू में मुझे कुछ दिक्कतें आई थी। आधुनिक संवेदना, यानी जिस माडर्न सेंसिबिलिटी की बात करते हैं, वह हिंदी कविता में तब तक जगह बना चुकी थी और कश्मीरी कविता में उतनी व्यापकता के साथ नहीं थी।

प्रश्न- असल में रैणा साहब, जो हिंदी कविता का स्वर है, हम इस पर थोड़ी बातचीत करना चाहते हैं कि कविता की जो संवेदना होती है, वो किसी भी क्षेत्र में, किसी भी भाषा में लिखी जाए, उसकी मानवीय संवेदना वही रहती है, वह बदलती नहीं है। आम आदमी का दर्द होता है, पीड़ा होती है। उसमें सौंदर्य होता है, प्रेम होता है, यह सब विषय तो होते ही हैं कविता में, वह चाहे किसी भाषा में लिखी जाए लेकिन कश्मीर की कविताएं इससे कुछ अलग हैं.... और उनमें आप की कविता भी है, मैं आपकी कविताओं को देखकर यह बात कह रहा हूं कि शायद उस समय से शुरुआत हो चुकी थी, कश्मीरी कविताओं में- एक निर्वासन का दर्द, एक बेचैनी, एक छटपटाहट, अपनी धरती से कटने का, अलग होने का दुख, पीड़ा है उन कविताओं में। उन कविताओं की दिशा तब यही थी और शायद आज भी बनी हुई है।

उत्तर- उसको हम इस तरह से देख सकते हैं कि यह जो निर्वासन की त्रासदी है, यह वर्ष 1989-90 के बाद आई। इसका पूर्वाभास उसके पहले की कविताओं में हम देख सकते हैं। निर्वासन की आहट उन कविताओं में सुनाई देने लग गई थी। उसे हम छुटपुट रूप में देखेंगे तो कुछ कविताओं में इसका आभास मिलना शुरू हो गया था। 1990 में क्या होगा उसकी कल्पना नहीं कर पाते थे उस रूप में। इसमें हमारे पिताजी की भी एक कविता थी, ''रात बासी हो... बात बासी हो गई...''उसमें आगे की पंक्तियाँ हैं, ''स्वर्ग में रहकर हम सभी स्वर्गवासी हो गए...'' देखिए इसमें कितना विरोधाभास है। स्वर्ग में रहकर हम जब अपने को स्वर्गवासी कह देते हैं। तो स्वर्गवासी का अर्थ आप समझते हैं। ये पूरा विरोधाभासी है।

प्रश्न- आपकी एक कविता है, ''तुम्हारा चिनार आदमख़ोर है...'', यह पंक्ति आती है उसमें। आपकी कई कविताएं हैं। इसमें एक कविता में या कहीं वक्तव्य में आपने कहा है कि ''फूल की ख़ुशबू आदमी को लोहा होने से बचाती है।''

उत्तर- यह कविता में ही कहा है......'फूल की परिभाषा' में.... आप जिस चिनार की बात कर रहे हैं, जिस पूर्वाभास की बात आप कर रहे हैं, 90' में जो हुआ है, निर्वासन का जो दर्द और त्रासदी रही है, यह कविता संग्रह 'चीख़ भी एक भाषा है'.... ये 1980-81 में प्रकाशित हुई थी.... मैं उन दिनों कश्मीर में ही था- ''अंततः तुम्हारे आंगन में खड़े चिनार की शाखाएँ......''; देखिए, उस वक़्त हमने सोचा भी नहीं था कि 1990 में क्या परेशानी आने वाली है; लेकिन कहा जाता है कि पूर्वाभास के रूप में कभी-कभी आप लिख जाते हैं तो आने वाले कई वर्षों बाद यदि ऐसा कुछ घटित होता है तो कुछ इन शब्दों में व्यक्त हो जाता है।

प्रश्न- कालजयी रचना की पहचान होती है कि या तो वह आने वाले समय की पहचान पहले कर लेती है या जो कविता उस समय रहती है वह आने वाले समय में भी प्रासंगिक बनी रहती है। यही एक सफल कविता की पहचान है। बहुत अच्छी कविता है। रैणा साहब, आप एक कवि होने के साथ-साथ, एक नाटककार हैं, अभिनेता हैं, रंगकर्मी हैं और निर्देशक भी हैं। आपने नाट्य-लेखन में भी काफी काम किया है; रेडियो के लिए किया है और मंच के लिए भी किया है। तो रंगमंच पर सक्रिय भूमिका की शुरूआत आपने कैसे की?

उत्तर- मेरा रंगमंच का जो क्षेत्र है वह कश्मीर-श्रीनगर ही रहा है। घर में इस तरह का माहौल था, मुझे शुरु से ही रंगमंच की तरफ़ बहुत प्रेरणा मिली। इसका मूल बीज कहां से आया, बहुत प्रेरणादायक रहा। मैं जब हाई स्कूल में था तो वहां पर एक कार्यक्रम का आयोजन होना था। मुझसे पूछा गया कि उपेंद्र, तुम क्या करोगे। मैं छोटा ही था, नवीं कक्षा में। मैंने अपने टीचर को कहा कि आप जैसा चाहेंगे। मेरे पिता जी ने मुझे प्रेरित किया कि कश्मीर की आदि कवयित्री ललेश्वरी का तुम वही रोल करो।'' मैंने कहा कि मैं तो इतना छोटा हूं, मैं कैसे कर सकता हूँ? और उन दिनों वे ललेश्वरी पर कुछ काम भी कर रहे थे। खैर, मेरी दादी का फिरन जो कश्मीर में पहनते हैं, आपने सुना होगा; उन्होंने वह फिरन मुझे पहना लिया। वह योगिनी थी और उसी अवस्था में रहती थी। तो वेशभूषा पहना के, मेकअप वगैरा करा के पिताजी ने मुझे तैयार करके, पूरा स्वरूप बनाकर भेज दिया और मुझे बहुत अच्छा लगा। पता नहीं, उस दिन जो चिंगारी जली, वह मेरे भीतर के नाटक-कलाकार के लिए थी।

प्रश्न- वही चिन्गारी आगे चलकर शोला बन गई...

उत्तर- सबसे बड़ी प्रेरणा तो मेरे पिताजी इस रूप में रहे कि वह आकाशवाणी में कार्य करते थे और उनका मुख्य कार्य उन दिनों यह था कि दिल्ली से जो 'नाटकों के अखिल भारतीय कार्यक्रम' के नाटक जाते थे हिंदी में, उनका वहां वह कश्मीरी में अनुवाद करते थे। और अधिकांश वह घर पर ही करते थे, क्योंकि एक-एक घंटे के नाटक होते थे। वे घर आकर रात-भर बैठ के उन नाटकों के अनुवाद किया करते थे। महीने में हर चौथे वृहस्पतिवार को वह नाटक होता था तो कई बार दो दिन, तीन दिन पहले ही नाटक आता था उनके पास, कभी एक दिन पहले भी आता था। रात-भर बैठ कर उनका अनुवाद करते थे। मैं भी वहां बैठा रहता था, उनको देखता रहता था और कहीं-कहीं पर वे कहते थे, ''उपेंद्र देखो कैसा हुआ।'' मतलब मुझे जानबूझकर प्रेरित करते रहते थे।

प्रश्न- यह बड़ी अच्छी बात हुई कि आपकी यह सारी सहूलियतें, प्रेरणा के स्रोत, सभी आपके घर में थे। आपने कश्मीर में तो काफी नाटक किए होंगे। दिल्ली जब आप आए और कार्यक्रम अधिशासी के रूप में जब आपने आकाशवाणी ज्वाइन

किया तो यहां भी यह सब चलता रहा या इसमें कुछ व्यवधान आया। क्या हुआ फिर....?

उत्तर- डॉ. साहब, जो गति मेरे रंगकर्मी ने ली थी वहां पर, क्या बतायें कि हमने अपना थिएटर ग्रुप बनाया था। उस समय ज़बरदस्त थिएटर मूवमेंट चल रहा था। उसमें हमने गाल्सवर्दी का 'जस्टिस' नाटक किया। यह बहुत बड़ा नाटक है, आप तो खुद रंगकर्मी हैं, आपको पता है। फिर हमने पारितोष गार्गी का नाटक था पंजाबी में, उसका कश्मीरी में पिताजी ने ही अनुवाद किया था, वह वहां पर किया। हमने ललित सहगल का जो नाटक है 'हत्या एक आकार की'- उसे किया। फिर 'नीली झील' जो नाटक डॉ धर्मवीर भारती का था, जो मेरा मंच पर विधिवत रूप से पहला नाटक था; जिसमें मैंने बूढ़े तांत्रिक का रोल किया। उसमें उस बूढ़े तांत्रिक की आयु सौ साल के ऊपर होती है। यहां से मेरे अभिनय करने की शुरुआत हुई। फिर मैंने कई नाटक रंगमंच के लिए लिखे। कश्मीरी में भी लिखे, हिन्दी में भी लिखे, जिनका प्रसारण दूरदर्शन पर हुआ। यह नाटक दूरदर्शन के जम्मू-कश्मीर, श्रीनगर केन्द्र से प्रसारित हुआ था। इसका निर्देशन प्यारे लाल हांडू जी ने किया, जो वहां के बहुत अच्छे प्रोड्यूसर और निर्देशक थे। इसके बाद हमने इसको रंगमंच पर किया।

प्रश्न- तो रैणा साहब, आपको आकाशवाणी में नौकरी मिल गई और आप दिल्ली शिफ़्ट हो गए। पर हम-आप सभी जानते हैं कि इस नौकरी में दूसरे कामों के लिए इतना समय नहीं मिलता, फिर भी जो काम करने वाले होते हैं, वह समय निकाल ही लेते हैं। हम सब लोगों ने ये किया है, समय निकाला है और उसी में नौकरी भी की है। उसी में किताबें भी लिखी हैं, उसी में रंगकर्म भी किया है। हम-आप, सब ने इस नौकरी में रहते भी बहुत कुछ किया है। तो आप की गतिविधियां कैसी रहीं, यहां आकर जारी रहीं या उसमें कुछ बाधा आई?

उत्तर- डॉ. साहब क्या बताएं आपको। 28 फरवरी, 1983 को मैंने आकाशवाणी में जब अपना पहला क़दम रखा, तो एकदम मेरे कार्यक्रम आरंभ हो गए, क्योंकि मेरी नियुक्ति 'हिंदी वार्ता' विभाग में हुई थी। वहां डॉ. हरि कृष्ण देवसरे थे, आपने सुना होगा, बाल साहित्य के बहुत बड़े लेखक, उन दिनों वे सहायक केंद्र निदेशक थे। उन्होंने मुझे बहुत बड़ा व्याख्यान दे दिया कि ''देखो उपेंद्र, आकाशवाणी में आए हो तो जान लो कि यहां पर समय इधर-उधर जाने का बहुत कम मिलता है। अपने

कार्यक्रमों पर ध्यान केंद्रित करना है।'' नया-नया था आकाशवाणी में तो उन्होंने ख़ासकर मुझे एक और सलाह दी। उन्होंने कहा कि जो भी कार्यक्रम आप का बनाया हुआ 'एयर' पर जायेगा, वह बिना आपके सुने नहीं जाना चाहिए, जब तक आप एक-एक शब्द खुद सुन न लें; क्योंकि यहां आप जिस पद पर हो, वहां आपकी ज़िम्मेदारी बनती है। तो इसलिए जो मैं 30 साल तक की उम्र तक कश्मीर में कमाया हुआ लेकर आया था दिल्ली, रंगमंच के रूप में, साहित्य के रूप में, 28 फ़रवरी, 1983 के बाद जब तक मैं रिटायर हुआ, वह मैं आकाशवाणी में ख़र्च करता रहा हूं, जितना अर्जित किया हुआ था। रंगमंच की तरफ मैं ज़्यादा ध्यान इसलिए नहीं दे पाया, क्योंकि मैं उतना समय नहीं दे पाया। तो आकाशवाणी की मेरी पोस्टिंग में मुझे जो कार्य दिया गया था, उसमें मुझे फ़ुर्सत बिल्कुल नहीं मिल पा रही थी। वैसे बीच-बीच में नाटक देखने जाता था मैं, मेरा मन भी करता था जब मैं नाटक देखता था तो किसी पात्र को देखकर यह लगता था कि यह रोल मैं कर रहा हूं। लेकिन रंगमंच में, किसी भी नाटक में, वहां पर सक्रिय रूप से भाग नहीं ले पाया, फिर भी, आकाशवाणी में कई साहित्यिक और सांस्कृतिक कार्यक्रमों का नियोजन किया, संचालन किया, इसमें कोई शक नहीं है।

प्रश्न- रैणा जी, रंगमंच और लेखन के आपके जो अनुभव पहले के थे वो निश्चित तौर पर आकाशवाणी में आपके काम में सहायक हुए होंगे। हम सब जानते हैं कि एक बहुत बड़ी ताक़त होती है कि अगर कोई रचनाकार है और वह रेडियो के लिए समानांतर काम कर रहा है तो लिखने-पढ़ने में सहूलियत हो जाती है, काम करने का एक अपना ढांचा बना-बनाया मिल जाता है। तो रेडियो में काम करते हुए बहुत सारे लोगों से आपका संपर्क हुआ होगा, बड़े-बड़े दिग्गज लोग आये होंगे, उन्हें आपने रिकॉर्ड किया होगा, कुछ उनके बारे में भी बताएं।

उत्तर- मैं बता दूं कि मेरा सौभाग्य रहा कि मैंने 'वार्ताओं का अखिल भारतीय कार्यक्रम' देखा; कई वर्षों तक 'सर्वभाषा कवि सम्मेलन' का इंचार्ज रहा, और साथ में 'डॉ. राजेंद्र प्रसाद व्याख्यानमाला' का भी इंचार्ज रहा कई वर्षों तक। सबसे बड़ा प्रसंग मैं आपको बताना चाहूंगा... जो मेरी ज़िंदगी में बहुत अहम है और उसमें थोड़ा-सा एक दूसरा पक्ष भी है, मैं नहीं चाह रहा था उसका ज़िक्र करूं, लेकिन आज आपके सामने कर ही लेता हूं। आकाशवाणी में जब मैं हिन्दी वार्ता विभाग में था, तो

बहुत ऊपर से बात चली, डायरेक्टर जेनरल के लेबल से कि आकाशवाणी आर्काइब्स के लिए वात्स्यायन जी को रिकॉर्ड किया जाये, उनसे रिक्वेस्ट की जाए। आकाशवाणी की आर्काइब्स के लिए आप जानते हैं छः-छः, आठ-आठ घंटों की रिकॉर्डिंग की जाती है, आकाशवाणी के संग्रहालय में इण्टरव्यू को सुरक्षित रखने के लिए। तो ये कहा गया कि उनको, अज्ञेय जी को कैसे मनाया जाए। अभी तक मेरे तक बात आई नहीं थी, लेकिन ऊपर-ऊपर के लेबल पर यह बात थी। वह मान नहीं रहे थे, आकाशवाणी में वे आते नहीं थे। रिकॉर्डिंग नहीं थी उनकी। फिर क्या हुआ कि आपने नाम सुना होगा, जयपुर में हमारे एक बहुत बड़े प्रसारणकर्मी गोपाल दास जी थे। तब तक वो रिटायर हो चुके थे। उनसे संपर्क किया गया, उनको डायरेक्टरेट बुलाया गया, उनसे बातचीत कर ली गई। उनको यह दायित्व सौंपा गया कि आप किसी भी तरीके से वात्स्यायन जी को मनाएं कि हम चाहते हैं कि उनकी रिकॉर्डिंग हम करें। वात्स्यायन जी उन दिनों यहां दिल्ली में सरदार पटेल मार्ग पर रहते थे, डालमिया जी के यहां, उनके घर में। गोपाल दास जी उनके पास कई बार जाते रहे, आते रहे। अंततः वात्स्यायन जी कुछ शर्तों के साथ उनकी बात मानने को तैयार हुए। उन्होंने शर्तें ये रखीं, जो मुझे याद है मोटा-मोटी कि जब तक मैं जीवित हूं तब तक आप इस रिकॉर्डिंग का उपयोग नहीं करेंगे। जो प्रश्नावली होगी, उसके लिए मेरे साथ कौन बैठेगा यानी मुझसे सवाल-जवाब कौन करेगा, नंबर तीन, जो मेरी कविताएं आप रिकॉर्ड करेंगे, अगर करेंगे तो उसका भी मेरे होते हुए, जीवित रहते हुए, प्रसारण नहीं होगा। तो गोपाल दास जी इसमें क़ामयाब हो गए और फिर जब सब फ़ॉर्मेलिटी पूरी हो गई तो अज्ञेय जी ने रघुवीर सहाय जी का नाम लिया कि वे ही उनका इंटरव्यू करेंगे। अब ये रिकॉर्ड करने की जो बात है वो आते-आते हिंदी वार्ता विभाग में आ गई और मुझे बुलाया गया कि आपको यह कोऑर्डिनेट करना है। क्या बताऊं आपको कि यह मेरे लिए बहुत बड़े सौभाग्य की बात थी। आठ दिन यह रिकॉर्डिंग चली और प्रतिदिन यह रिकॉर्डिंग लगभग पांच-पांच घंटे चली। मुझे पहले दिन कहा गया कि आप इसको कोऑर्डिनेट करिए और पहले दिन आप वात्स्यायन जी को ले के आइये उनके घर से। मेरे लिए इससे बढ़कर क्या बात होती, मेरा सौभाग्य होता। मैं उनके पास ऑफिस की गाड़ी लेकर गया। अंदर गया... वे आये तो मैंने चरण-स्पर्श किया और अपना परिचय दिया। वहां से मेरी पहली मुलाक़ात और वह पहली यात्रा

शुरू हुई तो उनको मैं गाड़ी में लेकर आया। गाड़ी में वो और मैं अकेला, पीछे की सीट पर बैठे तो बतियाते-बतियाते उन्होंने पूछना शुरू किया कि आप कहां से हैं। जब मैंने कहा कि मैं मोहन निराश जी का बेटा हूं तो कहने लगे कि मैं तो उनको जानता हूं; क्योंकि वात्स्यायन जी कश्मीर बहुत बार गए थे। कहने लगे कि मैं निराश जी को जानता हूं.... कहां हैं आजकल....? तो मैंने कहा कि आजकल वे शिमला में हैं। तो बतियाते-बतियाते उनके साथ खुलकर बातें हुईं। जब पहले दिन की रिकॉर्डिंग समाप्त हो गई तो हमने कहा कि सर, कल इसी समय पर आपकी गाड़ी आ जायेगी। उन्होंने कहा, ''नहीं..... आप भी आयेंगे... हम बातें करते हुए चलेंगे.... आप रोज़ मेरे पास आयेंगे, गाड़ी में बातें करेंगे।'' ये जो हम उनके साथ सात-आठ दिन रहे, वो मेरे लिए महत्वपूर्ण रहे। और उनसे क्या-क्या नहीं सुना मैंने, कविताएँ भी सुनीं मैंने और उन्होंने पेड़ के ऊपर बना वो मचान भी मुझे दिखाया जहां वो अक्सर बैठते थे। वहां उनके पास अक्सर पं. विद्यानिवास मिश्र जी आते थे।

प्रश्न- ये आपने जो पूरी घटना बताई तो सहज ही यह जिज्ञासा मेरे मन में और निश्चित ही हमारे दर्शकों के मन में उत्पन्न हो रही होगी कि यह रिकॉर्डिंग, जैसी कि उन्होंने शर्त रखी थी कि इसका प्रसारण उनकी मृत्यु के उपरांत हो तो क्या बाद में उनकी मृत्यु के बाद इसका प्रसारण हुआ....?

उत्तर- जब उनका स्वर्गवास हो गया, तो टुकड़ों-टुकड़ों में प्रसारित हुआ। और बाद में क्या हुआ कि उनकी जो रिकॉर्डिंग थी वह पुस्तक के रूप में प्रकाशित भी हुई। और जो बात मैं आपको बताना चाह रहा था कि उस समय किसी ने ध्यान नहीं दिया कि आठ दिन का मेरा जो श्रम था, परिश्रम था, उसका कहीं पर भी, उस पुस्तक में कोई ज़िक्र नहीं किया गया।

प्रश्न- रैणा साहब, यह बड़ी विचित्र बात है और अफ़सोस की भी।.. और आज आप रैणा साहब दूसरे व्यक्ति हैं जो ऐसी बात बता रहे हैं। हालांकि मैं और भी ऐसे लोगों के बारे में जानता हूं, कुछ स्थानों पर मैं भी भुक्तभोगी रहा हूं। लेकिन मैं यहां इस बात को नहीं कहूंगा। पर आज आप यह बात कह रहे हैं कि इतना सब कुछ आपने किया, इतनी मेहनत-परिश्रम किया उसके पीछे, और जब क्रेडिट लेने का समय आया तो उसमें आपके नाम का उल्लेख तक नहीं हुआ। क्या हमारे यहां, जो हमारा प्रसारण-मीडिया है, सिर्फ यहीं ऐसा होता है कि सब जगह ऐसा होता है; चाहे वह

ग़लती से हो, चाहे जानबूझकर किया जाए; ऐसे बहुत सारे काम जानबूझकर भी किए जाते हैं और हम सब लोग जानते हैं कि दफ़्तर में हर क़दम ऐसी चीज़ें चलती रहती हैं कि कोई आगे बढ़े तो पीछे खींच लो, किसी की झूठी शिकायत कर दो, क्यों होता है ऐसा?

उत्तर- डॉ. साहब, जब यह रिकॉर्ड हुआ था, उसके कई-कई और बहुत सारे वर्षों बाद, इसका संपादन होने के बाद, फिर वह पुस्तक के रूप में पूरा आया था। हो सकता है कि जब रिकॉर्डिंग आर्काइब्स में गई हो तो वहां पर लॉग-इन में, रिकॉर्ड मेंटेन करने में कहीं पर मेरे नाम के साथ भूल हुई होगी और फिर जब यह फ़ाइनली पुस्तक के रूप में छापा गया तो तय है कि उस समय मेरा नाम नहीं था।

प्रश्न- आप बहुत संकोच और विनम्रता के साथ इस बात को रख रहे हैं, मैं समझ सकता हूं, क्योंकि यह आपका स्वाभाविक गुण है कि आप किसी पर आरोपित नहीं कर सकते कोई चीज़, इसीलिए आप स्वयं ओढ़े ले रहे हैं; लेकिन मैं जानता हूं कि इस तरह की चीज़ें होती हैं और लोग जानबूझकर करते हैं। चलिए ये सब तो होता रहता है। तो रैणा साहब, फिर आप दिल्ली में ही रह गए कि कहीं और, दिल्ली से बाहर भी आपने सेवा दी?

उत्तर- मेरी अधिकतर पोस्टिंग दिल्ली में ही रही है। विदेश प्रसारण प्रभाग, राष्ट्रीय प्रसारण चैनल में काम किया।

प्रश्न- और आजकल तो आप, जैसा आपने कहा कि आप का कार्यक्रम चल रहा है- सोशल पटल पर तो आजकल माशाअल्लाह ख़ूब सक्रिय हैं आप। रोज़ाना आपके कहीं-ना-कहीं कार्यक्रम होते रहते हैं और आपकी कविताओं का वीडियो भी मैंने देखा है, एक तो मुझे भी आपने सौभाग्य दिया कि मैं आपकी कविताओं पर फिल्मांकन करूं, तो मैंने बनाया भी। तो काफी आप सक्रिय हैं। कैसे इतना समय निकालते हैं आप?

उत्तर- डॉ. साहब अब तो समय ही समय है। थोड़ा बहुत बाहर जाते थे, मित्रों से मिलने जाते थे। अभी कोरोना के संकट के कारण 2020, मार्च के बाद हम घर से बाहर निकल नहीं पाए, लेकिन मैं सोशल मीडिया को बहुत धन्यवाद करता हूं जिन्होंने हमें, कम-से-कम हम जैसे लोगों को..... आप भी तो बहुत सक्रिय हैं..... उसमें हमें इतना सहयोग दिया है तो इसलिए......।

प्रश्न- और आपका एक एल्बम बड़ा मशहूर हुआ इस सोशल मीडिया पर- 'घर अपना कश्मीर'।

उत्तर- जी, वह मेरा एक गीत है जिसमें कश्मीर का जो प्राकृतिक सौंदर्य है और उसकी जो आध्यात्मिकता है, उसमें मैंने संत योगिनी ललेश्वरी का भी ज़िक्र किया है, उसमें वह 'हरमुख' जो वहां पर हमारा स्थान है; और जिस कश्मीर को हम 'शारदा पीठ' के नाम से भी जानते हैं। तो उसका भी समावेश किया गया है उस गीत में। और मेरा गीत डॉ. अनिल शर्मा जी ने भी गाया है, बहुत सुंदर है, बहुत अच्छा गाया है, जो मेरी टाइमलाइन पर है मौजूद। तो थोड़ा बहुत कर ही लेते हैं इधर-उधर। और कुछ कविताएं लेकर कभी-कभी बैठ जाते हैं। मेरा जो 'टैब' है, उसपर प्रोग्राम बनाते रहते हैं, समय निकाल ही लेते हैं।

प्रश्न- तो इससे आपकी जो पूरी यात्रा है, चाहे वह आकाशवाणी की हो, प्रसारण की हो, कविता-लेखन की हो, रंगमंच की हो और जो यह सोशल मीडिया है जिसपर आप इतने सक्रिय हैं; इतनी सारी यात्राएं आपकी चलती रहती हैं तो आपकी एक जो शृंखला है कविताओं की; 'यात्रा' ही शायद उसका शीर्षक भी था, उसमें दो-चार कविताएं आपकी थीं, जो यात्राओं को लेकर ही थीं, जिसमें आपने कहा था कि 'कहां पर ख़त्म होती है तुम्हारी यात्रा और कहां से शुरू होती है मेरी यात्रा।' मुझे बहुत अच्छी कविता लगी।

उत्तर- डॉ. साहब, मैंने यात्रा सीरीज़ से दो-तीन, छोटी-छोटी कविताएं लिखी थीं। काफ़ी पसंद की गई हैं।

प्रश्न- एक कविता आपकी 'मां' पर थी। वह कविता बड़ी संवेदनशील कविता है। मैं चाहता हूं कि उसे ज़रूर सुनाएं।

उत्तर- यह कविता मैंने कई मंचों पर सुनाई है, क्योंकि इस कविता ने तो मुझे झकझोर कर रख दिया। कारण यह है कि जब 90' के बाद इतनी बड़ी त्रासदी हुई और लोग वहां से निर्वासित होकर चले आए तो बड़ी परेशानी हुई।

प्रश्न- दरअसल वह कविता बड़ी ही मार्मिक लगी मुझे..... बहुत ही संवेदनशील.... बहुत गहरी... हृदय में उतरती हुई-सी प्रतीत हुई....

उत्तर- जी, मां ने उस समय कहा कि हम कब वापस जायेंगे घर। जब पिताजी नहीं रहे तो मां अकेली हो गई। ज़्यादा वर्षों तक वह भी जीवित नहीं रह पाई, क्योंकि एक

दिन मुझे बता रही थीं कि बेटे हम कश्मीर, अपने घर वापिस कब जायेंगे। तो मैं उनको दिलासा देता रहा कि हमें जाना है, ज़रूर जाना है। लेकिन अंततः यह हुआ कि जाना नहीं हो पाया और मां चली गई यह संसार छोड़कर। फिर मैंने उन्हीं को समर्पित ये कविता लिखी है।

माँ,
हम घर छोड़ आए हैं
आज कहाँ हैं ? किस पथ पर ?
जनपथ पर या राजपथ पर।
माँ,
घर छोड़ते वक़्त
तुम भूल आयीं थोड़ी सी आग....
शायद बुझी नहीं होगी अभी
क्या इसीलिए हम अभी जीवित हैं।
माँ,
घर छोड़ते वक़्त हम
अपनी नदी भूल आए वहाँ,
अब कैसे बह रही होगी ?
कैसे हमारा विरह सह रही होगी ?
माँ,
मुझे वह नदी बहुत याद आ रही है।
जब भी लौट जाएँगे हम घर अपने
क्या नदी सूख गयी होगी ?
मैं अपनी आंसुओं की धारा से
सूखने नहीं दूँगा अपनी नदी को....
माँ, तुम जीवित रहना
अपने भीतर नदी को निरंतर
जीवित बहते रखना....
माँ,

नदी को अभी युगों-युगों तक
जीवित बहते हुए देखना है।....

प्रश्न- कितनी करुणा इस कविता में है और इसके बारे में कुछ कहना मुश्किल है कि वह पूरा-का-पूरा एक परिदृश्य, एक पीड़ा, एक वेदना, एक दर्द..... सबकुछ है इस कविता में। तो आपका बहुत-बहुत शुक्रिया.... इस कविता का आपने यहां पाठ किया और हमारे दर्शकों-श्रोताओं के लिए, ख़ास तौर से मेरे लिए, क्योंकि मैंने कहीं यह कविता किसी पटल पर ही आपसे सुनी थी और वह मुझे याद आ गई थी। तो रैणा साहब, आपकी यात्रा, लेखन की, कर्म की, इसी तरह चलती रहे और जीवन में और इसी तरह से काम करते रहें, साथ चलते रहें, नदी बहती रहे और इसी तरह फूल की ख़ुशबू हमें लोहा होने से बचाती रहे। मैं सब के लिए यही कामना करता हूं और आपका बहुत-बहुत आभार व्यक्त करता हूं, नमस्कार।

उत्तर- बहुत-बहुत आपका धन्यवाद डॉ. साहब, आप जैसे विद्वान व्यक्ति से यहां मुलाक़ात हुई, बहुत-बहुत धन्यवाद.... नमस्कार....।

* डॉ. उपेन्द्र नाथ रैणा के साथ लिया गया यह साक्षात्कार डॉ. किशोर सिन्हा द्वारा संचालित फ़ेसबुक पेज लाइव कार्यक्रम “साक्षी हैं शब्द” से साभार

बड़ा हुआ तो क्या हुआ

-डॉ. अंगदकुमार सिंह

शोध पत्र सार :

कबीरदास समाजद्रष्टा, लोकपारखी, बहुश्रुत, समाज-सुधारक तथा कवि थे, उन्होंने समाज को अत्यन्त करीब से देखकर, लोक को परखकर, विद्वानों से उनके उपदेशों को सुनकर, उसे ग्रहणकर समाज को सुधारने और मानवता की नयी राह दिखाने तथा अपनी बात जनता तक पहुँचाने के लिए अपने को कवि रूप में ढाला एवं कविता को अपनी अभिव्यक्ति का हथियार बनाया। कविता मूर्ख को पण्डित, भोगी को योगी, निष्प्राण को प्राणवान बनाती है। वर्तमान समय में सभी लोग बड़ा ही बनना चाहते हैं तथा उनकी सोच होती है कि लोग हमें इज्जत दें, सम्मान और कद्र करें, हमारे आने पर प्रणाम करें लेकिन वे कभी अपने गिरेबान में झाँककर नहीं देखते कि मैं कोई ऐसा कार्य कर रहा हूँ जिससे प्रभावित होकर लोग मेरी इज़्ज़त करें तथा मुझे नमस्कार करें। कोई भी मनुष्य धन अथवा लक्ष्मी की आभा से बड़ा नहीं हो जाता, बल्कि सदाशयता, उदार मनस्विता, विनयशीलता से सम्पन्न लक्ष्मी-रहित मनुष्य बड़ा होता है। कारण कि धनवान के पास धन के अतिरिक्त देने के लिए कुछ नहीं होता, जबकि धनहीन के पास धन के अलावा देने के लिए सर्वस्व होता है। 'सर्वस्व-अर्पण' का भाव बोध किसी गरीब को दुनिया का बादशाह बना सकता है।

बीज शब्दः

समाजद्रष्टा, लोकपारखी, बहुश्रुत, समाज-सुधारक, कवि, मूर्ख, सदाशयता, उदार मनस्विता, विनयशीलता, मनुष्य।

साहित्य-समीक्षा :

हिन्दी साहित्य का पूर्व मध्यकाल जिसे भक्तिकाल के नाम से जाना जाता है, इसी काल में कबीर का जन्म वाराणसी के 'लहरतारा' नामक सरोवर के किनारे

हुआ, यह वह समय था जब भारतीय समाज अपनी मर्यादाओं को तोड़कर विश्रृंखलता को उद्यत हो गया था, लोगों में निराशा और अवसाद ने ऐसी जगह बना ली थी कि वे अनेक अनैतिक कार्य करने में लगे हुए थे। ऐसे समय में कबीर का जन्म लेना एक क्रांतिकारी घटना सी साबित हुई, वे समाज द्रष्टा, लोकपारखी, बहुश्रुत, समाज-सुधारक तथा कवि थे, उन्होंने समाज को अत्यन्त करीब से देखकर, लोक को परखकर, विद्वानों से उनके उपदेशों को सुनकर, उसे ग्रहण कर समाज को सुधारने और मानवता की नई राह दिखाने तथा अपनी बात जनता तक पहुँचाने के लिए अपने को कवि रूप में ढाला एवं कविता को अपनी अभिव्यक्ति का हथियार बनाया, उनको यह पता था कि जो काम बड़े-बड़े विनाशक हथियार नहीं कर सकते वह काम अकेली कविता कर सकती है। कविता मूर्ख को पण्डित, भोगी को योगी, निष्प्राण को प्राणवान बनाती है। कबीरदास ने समाज को निकट से देख, सुना, गुना और तब जाकर अपने मुँख से कहा-**"बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर/ पंथी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर।"**

अर्थात् कोई खजूर के पेड़-समान बड़ा हो गया तो क्या फायदा? क्योंकि इससे राही या बटोही को छाया तो मिलती नहीं और न फल ही मिलता है? फल इसलिए नहीं मिलता क्योंकि बहुत दूर या ऊँचाई पर लगता है। तात्पर्य यह है कि यदि कोई व्यक्ति उच्च से उच्च पद पर को सुशोभित करने लगे खजूर के पेड़ की तरह और उसके इस पद प्राप्त करने से किसी को कोई लाभ न हो अर्थात् किसी प्रकार की छाया न मिले तो उसको पद प्राप्त करने से क्या लाभ? उसकी जब छाया दुर्लभ है तो फल की कल्पना करना अपने आप में धोखा देना है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है-''एक व्यक्ति उच्च पद को सुशोभित करने लगा इसलिए वह बड़ा हो गया। एक बार किसी कार्य से वह अपने से छोटे व्यक्ति के साथ बाहर गया। कार्य का निष्पादन करके दोनों लोग पुनः वापस आने के लिए ट्रेन को पकड़े तो उसमें बहुत भीड़ थी, दोनों किसी तरह डिब्बे में घुस गये। छोटे को सीट मिल गयी तथा बड़ा उल्लू की तरह इधर-उधर देखने लगा। छोटे ने देखा कि बड़ा खड़ा है इसलिए उसने अपनी सीट उसको दे दी और ख़ुद खड़ा हो गया। ट्रेन जब आगे बढ़ी तो भीड़ अधिक होने के कारण लोगों की दिक्कतें बढ़ने लगी, छोटा भी इससे कहाँ बच सकता था? उसके साथ भी दिक्कत हुई। वह अपने दर्द को सहन न कर सका और

बड़े से बताया पर उसका उसने कोई माकूल जवाब नहीं दिया तब जाकर छोटे ने ट्रेन से उतरने का फैसला किया तथा आधी रात को अनजान स्टेशन पर उतर गया। बाद में जब छोटा बड़े के घर गया तो उसने छोटे की 'उलटे चोर कोतवाल को डाँटे' जैसा व्यवहार किया।''

वर्तमान समय में सभी लोग बड़ा ही बनना चाहते हैं तथा उनकी सोच होती है कि लोग हमें इज़्ज़त दें, सम्मान और कद्र करें, हमारे आने पर प्रणाम करें लेकिन वे कभी अपने गिरेबान में झाँककर नहीं देखते कि मैं कोई ऐसा कार्य कर रहा हूँ जिससे प्रभावित होकर लोग मेरी इज़्ज़त करें तथा मुझे नमस्कार करें। जो लोग बड़े होने का दम्भ पालते हैं यदि कोई उनके पास कभी कुछ माँगने के लिए कोई चला जाता है तो अनेक प्रकार की बहाने बाज़ी करने लगते हैं, जब बहाना नहीं बन पाता तो ख़ुद अपना निग्नाछोली दिखा देते हैं कि मेरे पास कुछ नहीं है। ऐसे लोग माँगने वाले व्यक्ति से पहले मरे हुए के समान हो जाते हैं। इसीलिए रहीम ने ठीक ही कहा है- **''रहिमन वे नर मर चुके, जे कहुँ माँगन जाहिं/ उनते पहिले वे मुए, जिन मुँह निकसत नाहिं।''**[1] इस पर मेरे गाँव में घटी एक घटना याद आ रही है-''एक गाँव में तीस-चालीस घर थे, जिसमें अपने को बड़ा दिखाने वाला एक आदमी भी निवास करता था। बड़े आदमी के पास एक दिन एक किसान गेहूँ माँगने के लिए गया तो उसने बहुत सी बहाने बाज़ी करके गेहूँ नहीं दिया। पुनः किसान एक छोटे व्यक्ति के वहाँ जब गेहूँ लेने गया तो उसने प्रसन्नता पूर्वक किसान को गेहूँ दे दिया।'' इसलिए बड़ा तो वह छोटा व्यक्ति हुआ जिसने किसान को गेहूँ दिया वहीं जो अपने को बड़ा बनता था वह किसान के लिए छोटा हो गया।

समुद्र के पास अथाह जल होता है और वह विस्तृत भूभाग में फैला होता है वहीं नदियों में जल थोड़ा होता है तथा उसका विस्तार भी सीमित भूभाग में होता है, लेकिन समुद्र के जल को कोई पीता नहीं, किन्तु नदियों के जल को सभी लोग पीकर अपनी प्यास बुझाते हैं तथा अपने को तृप्त करते हैं एवं प्रसन्नचित्त हो जाते हैं। इसलिए पथिकों के लिए नदियाँ जीवनदायिनी होती हैं, बड़ी होती हैं, जबकि समुद्र उनकी नज़र में छोटा होता है।

बड़े (सयाने) वे हैं जो धन बढ़ने पर लोगों को मुक्त हस्त से दान देते हैं, उस धन का सदुपयोग वे दुःखियों, गरीबों के सेवार्थ खर्च करते हैं, उस धन को दोनों हाथों से दीन-दुःखियों में बाँट देते हैं। ठीक उसी प्रकार से जैसे नाव में जल बढ़ने पर बड़े लोग दोनों हाथों से उलचते हैं। कवि कबीर ने बहुत ही सटीक शब्दों में स्पष्ट निर्वाचन किया है- **''जो जल बाढ़ै नाव में, घर में बाढ़ै दाम/ दोऊ हाथ उलीचिए, यही सयानो काम।''**

जब व्यक्ति बड़ा होता है तो उसे अनेक प्रकार की जिम्मेदारी का निर्वाह करना पड़ता है, क्योंकि यदि कुछ बनता है तो लोग बड़े को ही कहते हैं और बिगड़ता है तो भी उसी को लोग दोषी ठहराते हैं। बड़ा छोटों से कभी किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं करता, सबको समान रूप से देखता है। छोटा यदि कुछ गलती कर देता है तो बड़ा उसे डाँट-डपटकर, समझा-बुझाकर उसकी गलती को क्षमा कर देता है। रहीम ने बहुत ही सटीक कहा है- **''छिमा बड़न को चाहिए, छोटेन को उतपात।''**

निष्कर्ष :

कुल मिलाकर सिर्फ़ बड़ा होने से कुछ नहीं होता, बड़ा वह है जो बड़े के समान आचरण करता है। यदि वह अपने पद, प्रतिष्ठा, कद के अनुसार आचरण नहीं करता तो वह बड़ा न होकर छोटा हो जाता है, धीरे-धीरे लोगों की नज़रों से गिरता चला जाता है और शुष्क, नीरस, प्रतिष्ठाहीन होकर खजूर के पेड़ की तरह दम्भ पाले हुए खड़ा रह जाता है, उसके पास कोई जाना नहीं चाहता क्योंकि किसी को उससे छाया या शीतलता नहीं मिलती, लेकिन जो भूला-भटककर चला जाता है उसे पछताना ही पड़ता है। वहीं जो उस पर फल लगते हैं अर्थात् जो धन, सम्पत्ति होती है उसको भी कोई प्राप्त नहीं कर सकता है, क्योंकि उसकी सम्पत्ति दूसरे को दुःख देने के लिए होती है, किसी की सहायता के लिए नहीं। इसीलिए उसकी पूछ समाज में नहीं रह जाती है जिससे वह जीते जी मरे हुए के समान हो जाता है। वहीं इसके उलट उस व्यक्ति के पास जो गरीबों को फल अर्थात् धन, सम्पत्ति का दान करता है उसके पास धीरे-धीरे लोग इकट्ठा होने लगते हैं और वह बड़ा से बड़ा होता चला जाता है। इसलिए जो लोग अपने को बड़ा मानते हैं उन्हें सबकी इज़्ज़त करनी चाहिए, सबको

समान रूप से देखना चाहिए, सबकी आवश्यकतानुसार मदद करनी चाहिए तभी वह व्यक्ति बड़ा बन पायेगा अन्यथा छोटा ही रह जायेगा।

सचमुच, कोई भी मनुष्य धन अथवा लक्ष्मी की आभा से बड़ा नहीं हो जाता, बल्कि सदाशयता, उदार मनस्विता, विनयशीलता से सम्पन्न लक्ष्मी- रहित मनुष्य बड़ा होता है। कारण कि धनवान के पास धन के अतिरिक्त देने के लिए कुछ नहीं होता, जबकि धनहीन के पास धन के अलावे देने के लिए सर्वस्व होता है। 'सर्वस्व-अर्पण' का भावबोध किसी गरीब को दुनिया का बादशाह बना सकता है।

सन्दर्भ :

1. रहीम, *रहीम-ग्रन्थावली*, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1985, पृष्ठ 103

2. रहीम, *रहीम-ग्रन्थावली*, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1985, पृष्ठ 83

-डॉ. अंगदकुमार सिंह

असिस्टेण्ट प्रोफेसर: हिन्दी

जवाहरलाल नेहरू पी.जी. कॉलेज, बाँसगाँव

गोरखपुर (उ.प्र.), भारत - 273403

मो.नं.: 7460856206

ई-मेल: anagadkumarsingh01@gmail.com

वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भाषाओं का योगदान : क्षेत्रीय भाषाओं की उपयोगिता के संदर्भ में

-सबीना अख्तर

प्रस्तावना- भारत देश में अलग-अलग जाति, धर्म और संस्कृति तथा संप्रदायों को मानने वाले लोग रहते हैं जिनकी भाषा, बोली, सभ्यता एक दूसरे से पृथक है हमारे देश में विविध भाषाएं बोली जाती हैं जिनमें से कई भाषाओं को संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त है| भारत के अंतर्गत 844 क्षेत्रीय भाषाएं तथा बोलियां बोली जाती हैं| देश के अंतर्गत प्रत्येक राज्य की अपनी भाषण जो कि उसे राज्य की आधिकारिक भाषा के रूप में प्रयोग की जाती है देश के संविधान के अंतर्गत 22 क्षेत्रीय भाषाओं का वर्णन किया गया है संविधान की आठवीं अनुसूची के अंतर्गत भारत देश की आधिकारिक भाषाओं को बताया गया है हमारे देश के संविधान के अंतर्गत भाग XVII में अनुच्छेद 343 से 351 तक आधिकारिक भाषाओं के संबंध में उल्लेख किया गया है वे भाषाएं जो देश के किसी भी क्षेत्र या किसी विशिष्ट क्षेत्र में बोली जाती है यह भाषाएं देश के अधिकारिक या राष्ट्रीय भाषाओं से भिन्नता रखती है क्षेत्रीय भाषाओं का उपयोग संचार हेतु विशेष भौगोलिक क्षेत्र में किया जाता है क्षेत्रीय भाषाएं किसी भी राज्य की स्थानीय संस्कृति, सभ्यता, परंपराओं को संरक्षित रखने में सहयोगी होती है।

बीज शब्द- वैश्विक, परिप्रेक्ष्य, क्षेत्रीय, भाषा, क्षेत्रीय भाषाएँ, स्थिति, परिवेश, उपादेयता

मूल आलेख- हमारे देश में विभिन्न जाति धर्म समुदायों के लोग निवास करते हैं जिनकी सभ्यता, बोली, भाषा एक दूसरे से पृथक होती है| संविधान के अंतर्गत 22 क्षेत्रीय भाषाओं का वर्णन किया गया है| किसी भी देश, राज्य, क्षेत्र विशेष में अधिक जनसंख्या द्वारा बोली जाने वाली भाषा वहां की क्षेत्रीय भाषा कहलाती है| क्षेत्रीय भाषाओं के प्रत्येक क्षेत्र में विभिन्न लाभ है| क्षेत्रीय भाषा सामाजिक संबंध को बेहतर बनाने के साथ-साथ देश के विकास में कई प्रकार से सहयोगी सिद्ध होती

है। विशेषता और शिक्षा के क्षेत्र में क्षेत्रीय भाषाओं का योगदान सर्वोपरि रहता है शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर क्षेत्रीय भाषाएं अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं| देश की संस्कृति, सभ्यता व वहां के इतिहास को सुरक्षित रखने में क्षेत्रीय भाषाएं अहम है| प्रस्तुत शोध पत्र में शोधार्थी द्वारा भाषाओं के संबंध में संविधान की आठवीं अनुसूची के बारे में, क्षेत्रीय भाषाओं को लेकर संबंधित सामाजिक प्रावधानों का उल्लेख, क्षेत्रीय भाषाओं के लाभ, क्षेत्रीय भाषाओं को सीखने की ज़रूरत के बारे में शिक्षा के क्षेत्र में क्षेत्रीय भाषा का महत्व, शिक्षा के क्षेत्र में क्षेत्रीय भाषा को विकसित करने के लिए किए जाने वाले प्रयास तथा साथ ही स्थानीय भाषाओं के विकास की ओर किए जाने वाले प्रयत्नों का उल्लेख किया गया है

क्षेत्रीय भाषा से संबंधित संवैधानिक प्रावधान

अनुच्छेद 345- संविधान के अनुच्छेद 346 तथा 347 के प्रावधान में वर्णित है कि कोई भी राज्य के विधान मंडल कानून के अनुसार उसे राज्य में बोली जाने वाली किसी एक या इससे ज़्यादा भाषाओं को या इसमें हिंदी भाषा को उस राज्य द्वारा आधिकारिक भाषाओं के रूप में स्वीकार कर सकता है|

अनुच्छेद 346- इस अनुच्छेद में संघ में आधिकारिक उद्देश्यों को पूर्ण करने हेतु दो राज्यों के मध्य व संघ और राज्य के मध्य भी संचार के लिए अधिकृत भाषा को अपनाया जा सकता है| उदाहरण - यदि किसी भी दो या इससे अधिक राज्य के संचार के लिए हिंदी भाषा को आधिकारिक भाषा के रूप में उपयोग करना चाहते हो तो वह ऐसा कर सकते हैं |

अनुच्छेद 347- इस अनुच्छेद के अंतर्गत राष्ट्रपति द्वारा किसी भाषा को उस राज्य की आधिकारिक भाषा के रूप में मान्यता प्रदान करने की शक्ति प्राप्त है, लेकिन इस शर्त पर की राष्ट्रपति इस बात पर सहमत हो कि संबंधित राज्य के अधिकांश लोग उस भाषा को मान्यता प्रदान करना चाहते हो|

अनुच्छेद 350 (ए)- इस अनुच्छेद के अंतर्गत मातृभाषा में प्राथमिक स्तर की शिक्षा प्रदान कराई जाएगी|

अनुच्छेद 350 (बी)- इस अनुच्छेद के अंतर्गत भाषाई अल्पसंख्यकों को लेकर अलग से एक विशेष अधिकारी को नियुक्त करने का प्रावधान करता है|

अनुच्छेद 351- इस अनुच्छेद के द्वारा हिंदी भाषा के विकास को लेकर केंद्र सरकार दिशा-निर्देश जारी कर सकते हैं|

क्षेत्रीय भाषाएं- किसी देश या राज्य में जहां लोग अधिक संख्या में देश या प्रदेश के किसी विशेष क्षेत्र में निवासित हो उस क्षेत्र में बड़ी संख्या में लोगों द्वारा बोले जाने वाली भाषा वहां की क्षेत्रीय भाषा कहलाती है|

अनुच्छेद 343 (1)- में उल्लिखित है कि संघ की आधिकारिक भाषा देवनागरी लिपि में हिंदी होगी|

क्षेत्रीय भाषा के लाभ- भारत के अतिरिक्त भी अन्य ऐसे कई एशियाई देश है जहां अध्ययन का माध्यम केवल अंग्रेज़ी न होकर क्षेत्रीय भाषाओं को भी माध्यम के विकल्प के रूप में रखा जाता है, जिनमें क्षेत्रीय भाषाओं को माध्यम रखने वाले छात्रों को सीखने की प्रक्रिया में सकारात्मक परिणामों का प्रभाव दिखाई देता है| क्षेत्रीय भाषाओं को शिक्षा के माध्यम के रूप में अंग्रेज़ी भाषा की तुलना में विज्ञान व गणित जैसे विषयों पर छात्रों को क्षेत्रीय भाषा के माध्यम होने से उनका प्रदर्शन बेहतर देखा जाता है|

क्षेत्रीय भाषाओं को माध्यम रखकर अध्ययन करने में विद्यार्थियों के आत्मविश्वास में वृद्धि देखी जाती है| क्षेत्रीय भाषा में सहज होने से छात्र अपने विचार स्पष्ट रूप से प्रकट कर पाते हैं साथ ही उनके माता-पिता के द्वारा बच्चों की शिक्षा में समर्थन दिया जाता है|

कई शिक्षण संस्थानों में शिक्षकों के ड्रॉपआउट की बढ़ती हुई दरों को देखा जाता है तथा छात्रों द्वारा अंग्रेज़ी भाषा में पकड़ अच्छी न होने के कारण पढ़ाई में खराब प्रदर्शन देखने को मिलता है|

क्षेत्रीय भाषा उन विद्यार्थियों के लिए ज़्यादा महत्वपूर्ण साबित होती है जो अपनी शुरुआती पढ़ाई अपनी क्षेत्रीय भाषा के माध्यम से करते हैं व ग्रामीण क्षेत्र के वे

विद्यार्थी जो अंग्रेज़ी भाषा में पकड़ कमज़ोर रखते हैं उनके लिए भी क्षेत्रीय भाषा लाभकारी सिद्ध होती है|

क्षेत्रीय भाषा सीखने की आवश्यकता- क्षेत्रीय भाषाओं के अध्ययन से उस स्थान की जीवन शैली तथा वहां के लोगों के साथ वार्तालाप करने में सहायक सिद्ध होती है| क्षेत्रीय भाषाओं का महत्व आर्थिक जीवन को बेहतर बनाने में मददगार साबित होता है तथा साथ ही क्षेत्रीय भाषा का महत्व संचार क्षमता और संस्कृति को समझने में सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करने में व सांस्कृतिक जागरूकता में सांस्कृतिक विरासत को सुरक्षित करने में व सांस्कृतिक जागरुकता के विकल्पों को बेहतर बनाने में सहायक सिद्ध होता है|

नि:स्वार्थता की भावना विकसित करने के लिए आवश्यक :

क्षेत्रीय भाषा को लेकर हमें दृष्टिकोण में बदलाव लाने की आवश्यकता है जिससे कि कक्षा में जब भी कोई विद्यार्थी अपनी क्षेत्रीय भाषा में प्रश्न पूछे तो उनके अंदर हीन भावना उत्पन्न न हो|

विषय विशिष्ट सुधार के लिए आवश्यक:

भारत के अलावा अन्य कई राष्ट्रों में शिक्षा अंग्रेज़ी माध्यम के स्थान पर क्षेत्रीय भाषा को माध्यम रखा जाता है जिससे कि छात्रों के क्षेत्रीय भाषा के माध्यम होने से उनके सीखने के परिणामों पर सकारात्मक प्रभाव देखा जाता है|

स्थानीय भाषाओं को बढ़ावा देने के लिए सरकार की पहल महत्वपूर्ण है :

क्षेत्रीय भाषा को लेकर भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद द्वारा भी 10 कॉलेजों में क्षेत्रीय भाषा को माध्यम रखकर पाठ्यक्रम शुरू किए गए |

नियामक संस्थाओं द्वारा कई विषयों को क्षेत्रीय भाषाओं में माध्यम रखकर 1500 पुस्तकें लिखी जाएगी|

वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग :

क्षेत्रीय भाषाओं को लेकर विश्वविद्यालय स्तरीय पुस्तकों का माध्यम क्षेत्रीय भाषाओं को रखा जाएगा तथा साथ ही इन पुस्तकों के प्रशासन को लेकर बढ़ावा देने के लिए प्रकाशन द्वारा अनुदान प्रदान किया जा रहा है|

राष्ट्रीय अनुवाद मिशन:

इस मिशन को केंद्रीय भाषा संस्थान के द्वारा क्रियान्वित किया जा रहा है|

[6:30 pm, 23/4/2024] +91 70887 82845: शिक्षा के क्षेत्र में क्षेत्रीय भाषाएं महत्वपूर्ण साबित होती है|

क्षेत्रीय भाषा किसी भी देश की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक आदि स्थिति को बेहतर बनाने के साथ-साथ संबंधित राष्ट्र की शैक्षिक स्थिति को भी उच्च बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है| क्षेत्रीय भाषा के द्वारा समुदायों में एकता स्थापित होती है| क्षेत्रीय भाषाएं किसी देश की राष्ट्रीय भाषा के महत्व में कमी नहीं लाती बल्कि क्षेत्रीय भाषा देश की सांस्कृतिक प्रासंगिकता, सभ्यता के महत्व को जानने में मददगार साबित होती है शिक्षा के क्षेत्र में क्षेत्रीय भाषाओं का योगदान महत्वपूर्ण है यह सांस्कृतिक इतिहास को संरक्षित करने में भाषाई विविधता के प्रोत्साहन को बढ़ाने में, हाशिए में रह रहे लोगों को लाभान्वित करती है क्षेत्रीय भाषाओं के द्वारा समावेशी समाज के निर्माण में सहायक सिद्ध होती है|

सांस्कृतिक विरासत को सुरक्षित रखने में सहायक सिद्ध होती हैं

देश की संस्कृति,सभ्यता को संरक्षित रखने में क्षेत्रीय भाषाएं महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है हमारे देश में विभिन्न भाषाएं बोली जाती हैं व प्रत्येक भाषा की अपनी संस्कृति व इतिहास होता है| क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम से छात्रों के साथ अन्य क्षेत्रीय लोगों को भी उस भाषा से जुड़ी कहानियां, रोचक तथ्यों, इतिहास का ज्ञान होता है| इस प्रकार क्षेत्रीय भाषाएं भारत की सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण में सहायक सिद्ध होती है| क्षेत्रीय भाषा के द्वारा विद्यार्थी किसी भी अज्ञात विरासत का ज्ञान हासिल कर सकता है|

अवधारणाओं की बेहतर समझ में सहायक सिद्ध होती है

छात्रों के लिए ऑनलाइन कक्षाओं में शिक्षा अर्जित करने में से एक, सनबीम वर्ल्ड स्कूल में छात्रों को सिखाई जाने वाली अवधारणा तथा विचार यदि उनकी मातृभाषा में दी जाए तो उन्हें समझने में आसानी होगी| अपनी भाषा में सहज होने के कारण विद्यार्थी उस विषय को सरलता से समझ सकते हैं| उदाहरण अंग्रेज़ी भाषा के स्थान पर गुजरात में रहने वाले छात्रों को वहां की क्षेत्रीय भाषा में अध्ययन करने में आसानी होगी|

संबंधित संचार क्षमताएं

भाषाएं बोली जाती है जो विद्यार्थी क्षेत्रीय भाषाओं का अध्ययन करते हैं वे छात्र देश के विभिन्न समुदायों वर्गों के लोगों के साथ वार्तालाप कर पाते हैं| उन्हें एक-दूसरे के विचारों को समझने में सरलता होती है| क्षेत्रीय भाषा के ज्ञान से सामाजिक एकता देखने को मिलती है तथा साथ ही सांस्कृतिक समझ को बढ़ावा मिलता है|

[6:30 pm, 23/4/2024] +91 70887 82845: संज्ञानात्मक विकास में सुधार होता है दूसरी भाषा सीखना संज्ञानात्मक विकास में मददगार होता है| क्षेत्रीय भाषाओं को सिखाने वाले छात्र विषय-वस्तु सीखने के साथ ही उनके संज्ञानात्मक क्षमताओं को विकसित करने में भी सहायक होती है जिससे कि छात्रों को दो भाषाओं के मध्य स्विच करना होगा जिसके परिणाम में छात्रों की रचनात्मकता में वृद्धि होगी तथा समस्या के समाधान की क्षमता के साथ-साथ उनकी स्मृति की वृद्धि में भी सहायक सिद्ध होती है|

रोज़गार की संभावनाएं बनी रहती है- क्षेत्रीय भाषाओं की भूमिका रोज़गार के क्षेत्र में भी मददगार साबित होता है| जो लोग क्षेत्रीय भाषा का ज्ञान रखते हैं वे उस क्षेत्र के लिए रोज़गार के लिए बेहतर साबित होते हैं क्योंकि वह उस क्षेत्र के लोगों के साथ बेहतर बातचीत करके उनके विचारों को आसानी से समझ पाते हैं| वहां के माहौल से भली-भांति परिचित हो पाते हैं जिससे कि वह उसे क्षेत्र में उनके पेशे वर संभावनाएं तथा साथ ही आर्थिक विस्तार में भी सहायक सिद्ध होती है|

भाषाई विविधता को प्रोत्साहन प्रदान होता है- भारत देश में भिन्न-भिन्न संस्कृति, सभ्यता, भाषाएं पाई जाती है| विद्यालयों में भारतीय क्षेत्रीय भाषाओं की शिक्षा प्रदान करना हमारे देश की भाषाई विविधता को प्रदर्शित तथा प्रोत्साहित करती है| ऑनलाइन सीबीएसई स्कूल में क्षेत्रीय भाषा को सिखाने में विभिन्न संस्कृतियों व समुदायों के मध्य सम्मान तथा सहिष्णुता में वृद्धि होती है|

हाशिए पर पड़े समुदायों को सशक्तिकरण प्राप्त होता है:

हमारे देश के वे संचित समूह जहां भारत की क्षेत्रीय भाषाएं बोली जाती हैं ऐसे राष्ट्रों को उनकी ही क्षेत्रीय भाषा में शिक्षा देने से वे शिक्षा की ओर अधिक उत्साहित होते हैं तथा साथ ही क्षेत्रीय भाषा विविध समुदायों के बच्चों के लिए शिक्षा अर्जित करने का माहौल तैयार करने में सहायक होती है| क्षेत्रीय भाषा का लाभ शिक्षा अर्जित करने के साथ-साथ एक समावेशी समाज के निर्माण के रूप में भी कारगर साबित होता है|

क्षेत्रीय भाषा अधिक व्यक्तियों के साथ वार्तालाप करने में सहायक सिद्ध होती है

क्षेत्रीय भाषा से हम एक-दूसरे के विचारों को भली-भांति समझ सकते हैं| क्षेत्रीय भाषा के द्वारा हम दूसरों के साथ उनकी मूल भाषा में बात करने से रिश्तों व आपसी समझ को बेहतर बना सकते हैं| क्षेत्रीय भाषा के माध्यम से हमें उस स्थान व समाज की संस्कृति को समझने में मदद मिलती है| क्षेत्रीय भाषा को सीखने से उस क्षेत्र विशेष के संचार से संबंधित अवसरों का भी विस्तार होता ह

सनबीम वर्ल्ड स्कूल द्वारा प्रस्तुत क्षेत्रीय भाषाएं :

क्षेत्रीय भाषाओं को लेकर सनबीम वर्ल्ड स्कूल विद्यार्थियों को उनकी क्षेत्रीय भाषा को प्रभावित तरीके से समझने हेतु एक उच्च मान्यता प्राप्त ऑनलाइन स्कूल के सहयोग से एक डिजिटल शिक्षण कार्यक्रम प्रस्तुत करता है इसके तहत योग्य प्रशिक्षकों तथा केंद्रित पाठ्यक्रम के सहयोग से डिजिटल स्कूली शिक्षा कार्यक्रम

प्रदान करने की गारंटी प्रदान करते हैं| सनबीम वर्ल्ड स्कूल के माध्यम से निम्न ऑनलाइन भाषा पाठ्यक्रम को सम्मिलित किया गया है-

1 - हिंदी ऑनलाइन कक्षाएं

2- पंजाबी ऑनलाइन कक्षाएं

3 - तमिल ऑनलाइन कक्षाएं

4- तेलुगू ऑनलाइन कक्षाएं

5 - कन्नड़ ऑनलाइन कक्षाएं

शिक्षा में क्षेत्रीय भाषा के विकास को लेकर किए गए प्रयत्न

संस्थान को शिक्षा के माध्यम के तौर पर किसी एक क्षेत्रीय भाषा को चयन करना होगा तथा अंग्रेज़ी माध्यम में ऐसे छात्रों के लिए सीखने में सहायक बनेंगे जिनकी क्षेत्रीय भाषा में पकड़ कमज़ोर है | शिक्षा संस्थानों में भविष्य में कक्षाओं में भाषा अनुवाद को लेकर कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित तकनीकी को उपलब्ध करवाना जिससे कि शिक्षा के माध्यम को लेकर उन्हें किसी समस्या का सामना न करना पड़े| भाषा को लेकर राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2022 बच्चों की शुरुआती शिक्षा 5 या 8 तक मातृभाषा में दी जानी चाहिए, तत्पश्चात इसे एक भाषा के रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए| विश्वविद्यालयों में अध्ययन सामग्री क्षेत्रीय भाषा में विकसित की जानी चाहिए|

सरकार द्वारा स्थानीय भाषाओं के विकास को लेकर किए गए प्रयास:

स्थानीय भाषाओं को बढ़ावा देने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा एक बार काउंसिल ऑफ इंडिया जैसे कई नियामक निकायों से संपर्क स्थापित किया जा रहे हैं| स्थानीय भाषाओं में कानूनी शिक्षा प्रदान करने हेतु देश के पूर्व मुख्य न्यायाधीश के अध्यक्षता में इस तरह की समिति को निर्मित किया गया|क्षेत्रीय भाषाओं को बढ़ावा देने हेतु भारतीय तकनीक शिक्षा परिषद द्वारा 10 कॉलेज में क्षेत्रीय भाषाओं में पाठ्यक्रम की शुरुआत की गई| इसके अतिरिक्त भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद क्षेत्रीय भाषा के क्षेत्र में विशेषज्ञों के साथ शिक्षा मंत्रालय

द्वारा स्थापित किए गए भारतीय भाषा विकास पर उच्च अधिकारी प्राप्त समिति के साथ भी कार्यरत है, जिससे की पुस्तकों का क्षेत्रीय भाषा में अनुवाद किया जा सके| क्षेत्रीय भाषा के संबंध में यह संस्था आगमी वर्ष के लिए विभिन्न विषयों को लेकर क्षेत्रीय भाषा में 1500 पुस्तकों को लिखे जाने के उद्देश्य निर्धारित कर रही है| क्षेत्रीय भाषाओं के विकास को लेकर वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा विश्वविद्यालय स्तरीय पुस्तकों को क्षेत्रीय भाषा में देने के लिए प्रशासन अनुदान मुहैया कर रहा है| क्षेत्रीय भाषाओं के संबंध में राष्ट्रीय अनुवाद मिशन को देश के केंद्रीय भाषा संस्थान के द्वारा क्रियान्वित किया जा रहा है|

निष्कर्ष- क्षेत्रीय भाषा का महत्व देश, प्रदेश, स्थानीय, ग्रामीण शहरी प्रत्येक स्तर पर होता है| क्षेत्रीय भाषा की संस्कृति, सभ्यता व सांस्कृतिक कार्यक्रम इतिहास को सुरक्षित बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है| इसके साथ ही क्षेत्रीय भाषा के द्वारा भाषाई विविधता को प्रोत्साहन मिलता है व संज्ञानात्मक विकास में वृद्धि को लेकर भी लाभदायक है| क्षेत्रीय भाषा एक आदर्श समाज के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान देती है तथा सामाजिक एकता, सामान्य दिखाई देती है शिक्षा के क्षेत्र में भी विभिन्न प्रकार से क्षेत्रीय भाषा महत्वपूर्ण है| अतः हम कह सकते हैं कि क्षेत्रीय भाषा राष्ट्रीय स्तर, प्रादेशिक स्तर, स्थानीय स्तर में भी देश के विकास में सहयोग प्रदान करती है|

**सबीना अख्तर, शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, हेमवती नंदन बहुगुणा*
केंद्रीय विश्वविद्यालय (स्वामी राम तीर्थ परिसर), टिहरी

जीतू

"जीतू की आँखें झिलमिला गई, समीर अपने हाथों से जीतू के गालों पर पड़े आँसुओं की चंद बूंदों को पोंछने लगा... तुम अपना ख्याल रखना| बस इतना कहकर समीर ने हवाओं में फ़ीकी मुस्कानें बिखेरी और फिर अपनी जीप की ओर चला गया|"

साधारण परिवार की एक सीधी-साधी सुंदर सी लड़की, सुर्ख होठ, गुलाबी रंग इतनी खूबसूरत की उसे देखकर लगता मानो कोई जन्नत की परी हो, उसका नाम **जीतू** था| जीतू रोज़ सवेरे अपनी भेड़ों को लेकर पहाड़ियों पर जाती थी, आकाश पर बिखरें सूरज की लालिमा, मदमस्त ठंडी-ठंडी हवाओं के झोंकें, पहाड़ियों का मनोरम दृश्य देखना उसकी फितरत थी|

एक दिन सुबह जीतू अपनी भेड़ों को चराने ले जा रही थी अचानक तेज़ रफ़्तार से आ रही जीप से उसकी भेड़ टकरा गई, जीतू ने कहा ओ बाबूजी... देखकर गाड़ी नहीं चला सकते| समीर ने उसे सॉरी कहा, जीतू ने कहा ओ बाबूजी हम सॉरी-वारी कुछ नहीं जाने, हम तो पढ़ें-लिखे नहीं हैं, समीर ने कहा मुझे माफ़ कर दीजिए गलती हो गई, वह लड़की बिना कुछ कहे अपनी भेड़ों को खदेड़ कर वापस घर ले गई| इतनी खूबसूरत, सुन्दरता की मूरत थी जीतू... समीर ने इतनी सुन्दर लड़की शायद पहले कभी नहीं देखी थी, तभी तो वह एक नज़र में उसके दिल में समा गई| समीर उसे जाते हुए तब तक देखता रहा जब तक वह उसकी आँखों से ओझल न हो गयी|

समीर दूसरे दिन फिर उसी जगह पर गया जहाँ वह उस लड़की से मिला था पर वह आज वहाँ नहीं आई थी| समीर उस लड़की को दोबारा देखने के लिए बेताब

था, लगातार समीर उस पहाड़ी पर घंटों उसका रास्ता तकता था पर आजकल न जाने जीतू को क्या हो गया था कि वह उन पहाड़ियों पर नहीं जा रही थी|

आज अचानक समीर ने देखा की, वह लड़की उससे पहले उन पहाड़ियों पर जाकर अपनी भेड़ों को चरा रही थी| समीर ने उस लड़की के समीप जाकर कहा, तुम्हारी भेड़ ठीक हो गई, उसने कहा हाँ, ठीक हो गई| समीर ने कहा तुम्हारा नाम क्या है? 'जीतू' हमारा नाम **जीतू** है उस लड़की ने कहा| जितना सुन्दर नाम उससे भी खूबसूरत हो तुम समीर ने अपने दिल से कहा| समीर ने जीतू को एक पेड़ की ओर इशारा करते हुए कहा चलो थोड़ी देर वहाँ बैठते है, जीतू मना नहीं कर सकी और दोनों पेड़ की ठंडी छाँव में बैठ गए| समीर ने जीतू को अपना परिचय दिया और कहा मैं आर्मी में हूँ और छुट्टियों में अपने घर आया हूँ| जीतू भी समीर को अपने घर परिवार के बारे में बताए जा रही थी, समीर उसे एकटक देखे जा रहा था| दोनों को ऐसा महसूस हो रहा था जैसे बहुत दिनों से एक-दूसरे को जानते हों पर उन दोनों की ये दूसरी मुलाकात थी| जीतू के दिल में समीर ने कब दस्तक दिया, ये तो जीतू को भी नहीं मालूम| समीर भी गोरा, ऊँचा कद, सुंदर आर्मी आफिसर जो ठहरा|

जीतू और समीर की मुलाकातें बढ़ती गई पर दोनों अपनी दिल की बात एक-दूसरे से कह नहीं पाते थे| एक दिन समीर को युद्ध के लिए बुलावा आ गया| समीर और जीतू दोनों उसी पहाड़ी पर रोज़ की तरह मिले, समीर से रहा नहीं गया झट से उसने जीतू का हाथ पकड़कर कह दिया, मैं तुमसे शादी करना चाहता हूँ और तुम्हारे बिना नहीं रह सकता, जीतू की पलकें शर्म से झुक गई कहा, धत् ! हमारी शादी की बातें हमारे माँ-बाप करते हैं हम थोड़ी करेंगें| एकाएक समीर ने कहा आज मैं वापस अपनी डियूटी पर जा रहा हूँ, जीतू की आँखें भर आई इतनी जल्दी क्यों जा रहे हो, समीर बोला जाना तो पड़ेगा बुलावा जो आया है| बाबूजी आर्मी ड्रेस में आप कितने सुंदर लगते हो जीतू ने अपने आँसुओं को रोकते हुए कहा, समीर ने हल्की सी मुस्कान से उसे धन्यवाद दिया| समीर ने कहा अच्छा अब मैं चलता हूँ, जीतू की आँखें झिलमिला गई समीर अपने हाथों से जीतू के गालों पर पड़े आँसुओं की चंद

बूँदों को पोंछने लगा, तुम अपना ख्याल रखना| बस इतना कहकर समीर ने हवाओं में फीकी मुस्कानें बिखेरी और फिर अपनी जीप की ओर चला गया| समीर का भी मन जीतू को छोड़कर जाने का नहीं था, समीर को लगा मानो वह अपने दिल के टुकड़े को छोड़कर जा रहा था| जीतू ने खामोश होठों से उसे विदाई दी और समीर चला गया, जीतू उसे दूर तक नजरें फैलाये हुए देखते रही|

दिन पर दिन बीतते गए, जीतू हमेशा उन पहाड़ियों पर समीर का इंतजार करती रही, रोज़ उन पहाड़ियों पर जाती थी और हवाओं से पूछती थी कि बाबूजी कब आएँगें पर हवाओं को क्या पता था कि समीर कब लौटेगा| जीतू की शादी हो गई| चार साल बाद जब समीर वापस आया तो किसी से पूछने पर पता चला की जीतू का विवाह हो गया है| समीर ने जब यह बातें सुनी तो उसके होश ही उड़ गए, उसको लगा मानो उसके दिल को कोई उससे छीनकर ले गया हो समीर इतने दिनों बाद जो लौटा था, आता भी कैसे छुट्टियाँ जो मिल नहीं रही थी| समीर अपने टूटे हुए दिल को लेकर रोज़ उन पहाड़ियों पर जीतू का इंतजार करता था|

एक दिन समीर पहाड़ियों पर उदास बैठा हुआ था और जीतू के बारे में ही सोच रहा था अचानक दूर तक नज़रें फैलाकर समीर ने देखा कि एक लड़की उसी की तरफ आ रही थी, उसने देखा तो वह जीतू ही थी| जीतू.... तुम, बाबूजी... आप, जीतू ने कहा| समीर ने कहा, क्या तुम मेरा इंतजार नहीं कर सकती थी? जीतू ने भीगे हुए पलकें उठाकर कहा, बाबूजी हम तो रोज़ आपका रास्ता देखते थे कि आप कब आएंगे पर आप तो आये ही नहीं, हमने अपने माँ-बाप को बहुत समझाया पर वे हमारी एक न माने| इतना कहकर जीतू अपने रास्ते चली गई| समीर बेचारा अब करता भी क्या, जीतू की यादें दिल में बसाकर वह भी अपनी डियूटी के लिए लौट गया|

डॉ. रंजीता कटकवार

हाई-वे का दर्द यानी ट्रकों की धड़कन

हाई-वे पहले बना कि ट्रक का ईजाद पहले हुआ, ये मुर्गी-अंडे जैसा सवाल है। ये दोनों बने ही एक-दूजे के लिए हैं। बिना ट्रक के हाई-वे और बिना हाई-वे के ट्रक, इसकी कल्पना भी करो, तो आपका चालान हो जाएगा। आप किसी भी हाई-वे पर चले जाइए, वहाँ आपको चलते हुए ट्रक दिखाई देंगे, खड़े हुए ट्रक दिखाई देंगे और कहीं-कहीं तो हाई-वे के किनारों की झाड़ियों को अपनी बांहों में समेटे ''गुलज़ार'' का गीत गाते हुए भी दिखाई देंगे-''औंधे पड़े रहे कभी करवट लिए हुए।'' हाई-वे पर ट्रक दौड़ रहे होते हैं समझिए सारा देश दौड़ रहा है।

ट्रकों की हड़ताल क्या हुई, पहिया क्या थमा, पूरा देश यकायक थम-सा गया। बेचारे ट्रक हाई-वे के किनारों पर चुपचाप उदास खड़े हैं। बिना ट्रकों के हाई-वे की हालत हारे हुए एम. एल. ए, चूसे गए आम और अभी-अभी पत्नी से ताज़ा डाँट खाए हुए पति के जैसी हो गई। न धुआँ, न हॉर्न, न शोर-शराबा, कर्फ्यू का-सा माहौल हो गया। बच्चे मज़े से क्रिकेट खेल रहे हैं। अँधे, हाई-वे ऐसे पार कर रहे हैं जैसे खटिया से उठकर घर का आंगन पार कर रहे हों। हड़ताल से हाई-वे का डिमोशन हो गया। माँएं अपने बच्चों से कहने लगीं- ''इधर गली में मत खेलो, रिक्शे, साइकिल की मार लग जाएगी, उधर हाई-वे पर मज़े से खेलो।'' लंबी-चौड़ी सुनसान सड़कें पिकनिक स्पॉट बन गई । दो-एक ने तो खाली जगह देख शादी का रिसेप्शन तक दे दिया। कल तक अपने रोबीले व्यक्तित्व, विशाल काया और उग्र स्वभाव के कारण हर आने-जाने वालों के साथ दादागिरी करते, दौड़ते ट्रक, आज डरे-डरे कोने में मुँह छिपाए यूँ खड़े हैं कि हर ऐरा-गैरा उसे छेड़ जाता है। साइकिल वाला मुँह चिढ़ाते हुए निकल जाता है और पैदल वाला उसके खड़े होने की विवशता का उपयोग कर लेता है।

हड़ताल के चौथे दिन ढाबे के आसपास खड़े ट्रक आपस में बतिया रहे थे। -''पता नहीं, ये हड़ताल कब खत्म होगी। चार दिन हो गए भूख से मरे जा रहे हैं। -गलत समझते हैं लोग, कि हम डीज़ल से चलते हैं। हमारी असली खुराक तो सड़कें होती हैं। डीज़ल तो हम यूँ ही बड़े लोगों की देखा-देखी भूख जगाने के लिए सूप की तरह पीते हैं। कसम ले लो इन चार दिनों में दो इंच भी चले हैं। ये हड़ताल वाले क्यों नहीं सोचते हमारे बारे में, क्या हम में जान नहीं होती ?'' -एक ट्रक बोला। -''होती

क्यों नहीं,'' दूसरा ट्रक बोला-''हम में भी जान होती है, -मेरा मालिक रात का खाना खाकर जब चलने को तैयार होता है तो बच्चों की खैरियत के बहाने अपनी बीवी से ऐसी-ऐसी बातें करता है कि सैकड़ों मील दूर उसकी बीवी के हाथ से मोबाइल छूट जाता है। वह इतनी दूर होकर भी मारे लाज के अपना चेहरा हथेलियों में छुपा लेती है और मेरा मालिक हलो-हलो करके हँसता रहता है। फिर बीवी और बच्चों की तस्वीर चूमकर जब स्टीयरिंग संभालता है तो मैं भी रोमांचित हो जाता हूँ और - ''जल्दी चल गड़िये मैनूँ यार से मिलना है'' के गीत पर अपनी महबूबा सड़कों से लिपटकर और भी ऐसी तेज़ी से दौड़ता हूँ। आठ का एवरेज ऐसे ही दस पर नहीं आता । और क्या सबूत चाहिए कि हम में भी जज़्बा होता है, हम में भी जान होती है।''

''प्यार ही नहीं हमें आदमियों की तरह गुस्सा भी आता है'' तीसरा ट्रक बोला-''उस दिन आरटीओ वाले ने चालान भी काटा, ऊपर से दो सौ की रिश्वत भी ली- सोचा चलो ये भी सिस्टम का एक हिस्सा है। मैं चुप रहा। पर इसके लिए जब मेरे मालिक को हाथ-पैर भी जोड़ना पड़ा तो मेरा डीज़ल खौल गया, मैंने गुस्से से कहा-''ओय आरटीओ के बच्चे, किसी दिन सिविल ड्रेस में मिलना, ऐसा चालान काटूंगा कि न तू दंड भरने लायक रहेगा और न हाथ-पैर जोड़ने लायक रहेगा।'' -पर मेरी आवाज़ हवा में खो गई।, सारा गुस्सा पीना पड़ा, किसी ने महसूस नहीं किया कि हम में भी जान होती है।''

तभी चार-पाँच ट्रक उस कोने में खड़े बूढ़े ट्रक से एक साथ बोल पड़े- ''दादा, तुमने तो दुनिया देखी है, मुल्क की कोई सड़क ऐसी नहीं होगी, जहाँ आपके पाँव न पड़े हों! ये दुनिया वाले आखिर कब समझेंगे कि हम में भी जान होती है।''
बूढ़ा ट्रक एक लंबी ठंडी सांस लेकर बोला-''ये साइंस, पेड़-पौधों तक तो आ गया है कि उनमें जान होती है, -पर अभी तक लोह-लक्कड़ तक नहीं पहुँचा- और पहुँचेगा भी नहीं। उसके लिए किसी खास किस्म की लेबोरेटरी से गुजरना होता है। कभी-कभी कोई नसीब वाला ही उससे गुज़रता है।''

-''दादा बताओ ना, क्या आप भी कभी उस लेबोरेटरी से गुज़रे ? क्या आपके जीवन में वो क्षण आया, जब कोई दूसरा महसूस करें कि हम में भी जान होती है?''

-''हाँ एक बार आया था,'' बूढ़ा ट्रक अपने अतीत में खोते हुए बोला, -''बात पुरानी है, जब मेरा मालिक बंता पहली बार ट्रक लेकर निकला था, अभी तो उसकी मूँछें भी नहीं फूटी थीं, पर सरदार के बच्चों का पाँव एक्सीलेटर तक पहुँचा कि वो ट्रक चलाने लगता है। उसकी माँ बहुत रो रही थी। और खुश भी थी कि, उसका बेटा कमाने जा रहा है। -पर रो इसलिए रही थी, कि दस साल पहले बंता का बाप ट्रक एक्सिडेंट में मर चुका था। माँ नहीं चाहती थी, कि उसका बंता भी ट्रक चलाए। पर ट्रक और सरदार की जोड़ी ज़मीन पर तो तय नहीं होती, आसमान से उतरती है। यहाँ तो ''गुलज़ार'' बनने के लिए भी संपूरन सिंह (गुलज़ार का असली नाम) को कुछ दिन गैरेज में काम करना होता है। पर माँ है कि रोये जा रही थी- पराया देश, आँधी-तूफान, खराब सड़कें, पुलिसवाले, गुंडे-मवाली इन सबका सामना करते हुए ट्रक चलाना, सरहद पर दुश्मनों से घिरे अकेले गोली चलाने जैसा दुष्कर काम है।'' (और दोनों ही जगह प्राय: सरदार ही होते हैं) माँ ने दसों बार ऊपर हाथ उठाकर रब से अरदास की। बीसों बार गुरू ग्रंथ साहब पर मथ्था टेका। दूसरे चार-पाँच ड्राइवरों ने धीरज भी दिया-''बीजी, तू फिकर मत कर, जब तक बंतो पक्का नहीं होता, हम उसे अकेला नहीं छोड़ेंगे।'' बंता भी बोला-''माँ तू फिकर मत कर, मैं गाड़ी धीरे चलाऊंगा। किसी से उलझूँगा भी नहीं। फिर अब तो मोबाइल आ गया, मैं हर घंटे तुमसे बात करूँगा'' पर माँ है कि रोये जा रही थी। वैसे भी ट्रक ड्राइवरों की माँएं कुछ ज़्यादा ही संवेदनशील होती हैं। एक्सिडेंट की ख़बर सुनते ही उसका कलेजा मुँह को आ जाता है, भले ही उस वक्त उसका बेटा उसके सामने खाना खा रहा होता है, तो भी।

आखिर बिदा का क्षण आ ही गया। बंतो ने जैसे ही माँ के पैर छुए, उसे गले लगाती माँ ऐसी चीख पड़ी मानो बेटी पहली बार ससुराल जा रही है। आसपास के सभी की आँखें छलक उठी। बंतो आँख पोंछता हुए स्टीयरिंग संभाला और वाहे गुरू की जय बोल चाबी घुमाई और जैसे ही मैं चला, बंतो की माँ झट से मेरे पास आई और मुझे थपथपाते धीरे से बोली-''मेरे बंतो का खयाल रखना!''

तब मुझे लगा, न केवल मुझ में जान है, बल्कि कोई दूसरा भी महसूस कर रहा है, कि मुझ में भी जान है।

******* **घनश्याम अग्रवाल**

यह कश्मीर की धरती

यह कश्मीर की धरती बड़ी ही प्यारी है लगती,
यह कश्मीर की धरती बड़ी ही प्यारी है लगती,
जो एक बार वहाँ जाता है,
फिर वापिस नहीं आना चाहता है,
पर्वतों से बर्फ के छोटे-छोटे कण,
जब ज़मीन पर गिरे,
मानो मोती से हों बिखरे,
ऋषि कश्यप ने संकल्प था किया,
इसी धरती पर आकर कठोर तप था किया,
नदियों की कल-कल की ध्वनि
का मधुर लगता है गान,
मानो अमृत रस का कर लिया हो पान,
यहाँ पक्षी भी चहकते हैं,
इस पावन भूमि की मिट्टी भी कितनी महकती है,
सम्राट अशोक का मन था जब आक्रांत,
यहीं आकर हो गया था शांत,
बौद्ध धर्म का किया प्रचार,
हल्का हो गया मन का भार,
स्वर्ग के जैसा आनंद यहाँ मिलता है,
फूलों के जैसा प्रसन्नता से चेहरा खिलता है,
ऐसी धरती पर हमें नाज़ है,
ऐसी धरती पर हमें नाज है,

हिमालय जिसके सिर का ताज है,
हिमालय जिसके सिर का ताज है।

चंचल
कक्षा -शिक्षा स्नातक (पृथम वर्ष)
महाविद्यालय - छोटूराम कालेज आफ एजुकेशन (रोहतक)
नेट हिंदी साहित्य।
पता- पिलाना, रोहतक (124202) हरियाणा।

ठंडी वादियों में

जहाँ की हवाओं से पाता है सुकून देश सारा,
एक प्रांत ऐसा भी है हमारा,
कहीं है दर्रा, कहीं है झील का किनारा,
कहीं बनी है घाटी, कहीं नदियों का जाल,
महकता है जिससे सारा आसमान,
वहाँ के पहनावे, वहाँ की बोलियाँ मोहती हैं मन को,
जब घूमते हैं ठंडी वादियों में खोते हैं तन को,
कहीं गिरता है झरना, कहीं बहती है सरिता,
मिलता है आनंद वहाँ स्वर्ग के जैसा,
कभी पानी की कल-कल,
कभी हवाओं की सर-सर,
कभी दाँतों की कड़-कड़,
कभी बादलों की गड़-गड़,
गिरते हैं हिमकण दिन-रात जहाँ,
जमा देती है हवा पानी, पेट्रोल वहाँ,
कभी रंगीन रातें, कभी सुनहरी चाँदनी,
होता है मौसम बड़ा सुहावना वहाँ,

मगर है और भी एक कड़वी सच्चाई,
बैठी है आड़ में सशस्त्र सेना भी वहाँ,
आए थे जिसे रोंदते बहुत से विदेशी,
देखा था युद्ध उसने और रहेगा देखता,
देखा है उसने द्ज़िद्द पर अड़े विदेशियों को पाने को उसे,
कभी चीनियों ने कब्ज़ा जताया,
कभी पाकिस्तानियों ने हक जताया,
मगर उसकी खूबसूरती को कोई पहचान न पाया,
जीते नहीं उसे जो लोगों को जीलाना जानता है, लुभाना जानता है,
कभी जाते हैं देशवासी,
कभी आते हैं विदेशी,
देख जिसकी सुंदरता होते हैं सब मोहित,
वे बर्फ के गोले, वे ठंडी हवाएँ,
देती हैं राहत, सुकून दिल को,
घूमने जाना वहाँ अच्छा बहुत है लगता,
किंतु देखा है हमने वहाँ के लोगों को,
कहीं और रोज़गार कमाते हुए,
'मुश्किल वहाँ जीवन' वे लोग यह कहते हैं,
हम सोचते हैं वहाँ एक नया जीवन है।

रेणु
शिक्षा- स्नातकोत्तर, बी.एड. (pursuing)
नेट हिंदी साहित्य, पता - सौंधी , बादली, झज्जर (हरियाणा)

कश्मीर

किसने बिखेरी ये छटा,
कौन इसका रचनाकार
जो देखे जितनी बार,
जाए अपना हृदय हार
कहां से लाऊं लेखनी
जो करे वर्णन
ए कश्मीर की पावन धरा
स्वीकार कर मेरा नमन
लिखूं फैली दूर तलक
मखमल-सी श्वेत चादर
या उस धवल धरा पर
गिरती रश्मि का मोती बनना लिखूं?
गगनचुंबी स्वर्णाभ शिखरों का
सूरज से मिलन लिखूं
या रात्रि में नभ में अच्छादित
तारों का टिमटिमाना लिखूं?
बुलबुल, हिमालयी मोलाज, कलिज तीतर का चहचहाना लिंखूं
या गुलाब, गेंदा, लीली, जरबेरा, ट्यूलिप का महकना लिखूं
सेब, नाशपाती आडू, बादाम से झुकी डाली
चुपके-चुपके अपनी मिठास से चुराती चित
कोई गौरैया मतवाली
उस गौरैया की चपलता लिखूं
या किसी और डाली पर प्रणय लिखूं?

हिमाच्छादित वृक्षों का करूं वर्णन
या लिखूं उस हिम का महत्त्व जिसमें करते सैलानी विचरण
जिसका ना कोई सानिध्य
कैसे करूं वर्णन, जग प्रसिद्ध 'रऊफ' लोक नृत्य
लिखूं हाफ़िज़ नगमा के बारे में
या गूंजता सूफियाना कलाम लिखूं?
गुलमर्ग की अनुपम छटा लिखूं
या उमड़ते-घुमड़ते बादल लिखूं
गिरी से गिरते प्रपात लिखूं,
या लिखूं झीलों पर या फिर अंचल से निकलती सरिताएं लिखूं
लिखूं ऋषि कश्यप का तप
और खूबसूरत वादियों की गौरव गाथा कहूं
या इस शांतिपूर्ण वातावरण में
मां की गोद जैसा सुकून लिखूं
लिखूं पिरपंजाल, जोजिला दर्रे पर
या फिर तन-मन को देती सुकून
बर्फानी समीर लिखूं
कितना कुछ है लिखने को
पर कौन-सा विषय चुनूं
कोई तो बताए आख़िर किस पर लिखूं?

-उमा
शैक्षणिक योग्यता :– स्नातकोत्तर
पता :– रानीला, चरखी दादरी, हरियाणा

कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर का तराना (लिप्यन्तरण)

डॉ. मुदस्सिर अहमद भट्ट

ही मौज कशीरी, ही मौज कशीरी, ही मौज कशीरी

ही मौज कशीरी छि आयी पत वत अलिमइक आगअर सआरी, ही मौज कशीरी
ही मौज कशीरी छि आयी वत वत अलिमइक आगअर सआरी, ही मौज कशीरी।

येथ वज़्ज़ी चह सानेन सीनन मंज़, छख अरिफानुक दरया जारी, ही मौज कशीरी
ही मौज कशीरी छि आयी पत वत अलिमइक आगअर सआरी, ही मौज कशीरी।

चान्य येति सोन यि दानिश्गाह, यथ स्वर्गस मंज़ तामीर सपुद
चान्य इल्हाम्य येय नाग वुज़ियोव, चान्य राम्जुक तफसीर सपुद।
चान्य पोतकालच आदारी, सआन्य अज़कालच बीनादारी, ही मौज कशीरी
ही मौज कशीरी छि आयी पत वत अलिमइक आगअर सआरी, ही मौज कशीरी।

येति शोख खिमेंद्रन त्रोश बावथ, येति बिल्हण सुन्द मोत यार वगुन
येति कल्हण सन्ज़ वेय्थ काड़ कडान, येति अभिनव गुप्तुन ज्ञान सदुर
येति लल वाखअन हिन्ज़ ज़लवअन रेह, येति शेख श्रुकेन हिन्ज़ दमदअरी, ही मौज कशीरी
ही मौज कशीरी छि आयी पत वत अलिमइक आगअर सआरी, ही मौज कशीरी।

येति सुबहच रहमत हजरतबल, येति शामच फरहत जून तः डल
रेत तपुल चिहुय येति बोमबअरि गथ, प्रेथ छायि ति कर छोप येमबरिज़ल

येति शोख तह बडशाहस आलव ग्रज़ि इशिक तः इकबालस पारी, ही मौज कशीरी
ही मौज कशीरी छि आयी पत वत अलिमइक आगअर सआरी, ही मौज कशीरी।

बेदार ज़मीरण हिन्ज़ बावत, बेदार ज़मीरण हिन्ज़ बावत
बेबाख गिरेबान चाख गनी, अनहअर खायालन हिन्ज़ दोदकोल,
नेहरू संज बुमम सअर कोह कनी, येति ग्रशमस हरमोख ताल शिहिज,
येति शनन्ह गोफह मंज़ सआह अच्छ नारी, ही मौज कशीरी
ही मौज कशीरी छि आयी पत वत अलिमइक आगअर सआरी, ही मौज कशीरी।

येमि नूर मुनारइक परतव आस्य, येमि नूर मुनारइक परतव आस्य
अख अकिस वछित आफ़ताब बनोव, येथ शोखच थरि पेठ वोलसन येथ
हुसनुक सोन लोलुक ख़्वाब बनोव, येथ पाथरिस रंग-छटह सोनज़ेअल फुलय,
येथ फ़िज़हस पारद्द वुफ़वअरी, ही मौज कशीरी
ही मौज कशीरी छि आयी पत वत अलिमइक आगअर सआरी, ही मौज कशीरी।

प्रथ विज्ज़ी चह सानेन सीनन मंज़, छख अरिफानुक दरया जारी, ही मौज कशीरी
ही मौज कशीरी छि आयी पत वत अलिमइक आगअर सआरी, ही मौज कशीरी।